* ॐ *

गीतायन

लेखक—

डाक्टर देवदत्त,

निवासी ग्राम—मोहम्दाबाद,

टूंडला, ज़ि॰ आगरा।

पुस्तक मिलने का पता—

डा॰ देवदत्त,

गुरुकुल-वृन्दावन, मथुरा।

मूल्य १।) सजिल्द १॥)

निवेदन

गीतायन में कुछ प्रारम्भिक पृष्ठों पर "गीतायन" के
स्थान में "गीतायण" अशुद्ध छप गया है तथा
अन्य कई स्थानों में भी अशुद्धियाँ रह
गई हैं पाठक क्षमा करें।

* भूमिका *

रतवर्ष में जितने ग्रन्थ देखने में आते हैं उन सब में गीता को लगभग सब सम्प्रदाय के लोगों ने अधिक महत्व दिया है। इस में भी कोई सन्देह नहीं कि गीता में परमार्थ सम्बन्धी हर प्रश्न पर थोड़ा या बहुत विचार अवश्य किया गया है। गीता में कर्म, उपासना, और ज्ञान की अच्छी मीमांसा की गई है। यह वास्तव में सब उपनिषदों का सार रूप है तथा इसके विषय में ठीक ही कहा गया है कि—

दोहा—उपनिषदें सब धेनुवत, दुहनहार गोपाल।
पार्थ बच्छ गीता सुपय, पीवहिं बुद्धि विशाल॥

सब उपनिषदें मिलकर गाय के समान हैं, भगवान् श्रीकृष्ण जी गाय के दुहने वाले हैं और अर्जुन बच्छे के समान है, जो बारम्बार अपने प्रश्नों रूप हूलों को मार मार कर गीता रूप सुन्दर दुग्ध के निकलने में सहायक होता है। इस गीता रूप दूध को केवल बुद्धिमान् विवेकी लोग ही पीते हैं। और भी कहा है—

दोहा—गीता महिमा जानहीं, केवल एक व्रजेश।
कछु अर्जुन कछु व्यास शुक, याज्ञवल्क मिथिलेश॥

गीता के यथार्थ भाव को तो केवल भगवान् श्रीकृष्णजी ही जानते थे, कुछ अर्जुन ने भी समझा, उनसे कम व्यासजी

ने, उनसे कम शुकदेवजी ने, उन से कम याज्ञवल्क्य और जनक ने समझा। कहने का तात्पर्य यह है कि गीता के तत्त्व को समझना किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। और केवल पुस्तक पढ़कर गीता को समझ लेना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। इस के तत्व को समझने के लिये तो मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छा वाला) होकर किसी ब्रह्मवेत्ता तथा ब्रह्म-निष्ठ गुरु की शरण को प्राप्त होना चाहिये। उन गुरु की सेवा करके उनको प्रसन्न करना चहिये, फिर उनके मुख से गीता के रहस्य को सुन कर मनन और निदिध्यासन पूर्वक गीता-तत्त्व को प्राप्त करना चाहिये। यह ग्रन्थ कर्म योग का प्रतिपादक होने से गृहस्थियों के लिये उतनाही उपयोगी है जितना कि संन्यासियों के लिये। यदि कहा जाय कि गीता गृहस्थियों के लिये संन्यासियों से भी अधिक उपयोगी है तो भी अनुचित न होगा। अब कर्म क्या है? कर्म योग क्या है? तथा ज्ञान क्या है? इस विषय में भी एक शब्द कहना यहाँ असङ्गत न होगा।

वासना पूर्वक किये गये सब कामों को कर्म कहते हैं। यह कर्म दो प्रकार के होते हैं एक तो भले और दूसरे बुरे। भले कामों को पुण्य और बुरे कामों को पाप कहते हैं। पाप रूप कर्म तो सदा ही त्याज्य हैं। पुण्य रूप कर्मों के करने से स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है। पर यह बात समझ लेना चाहिये कि जब पुण्य का फल, जो नाना ऐश्वर्यों का लोक-लोकान्तर में भोगना है, वह समाप्त हो चुकता है तो फिर यह जीव इसी संसार में आकर जन्म मृत्यु रूप दुख को प्राप्त होता है। जैसे जितना रुपया जिस मनुष्य ने कमाया है उस रुपये के ख़तम हो जाने पर वह मनुष्य फिर निर्धन हो जाता है और फिर धन प्राप्ति के लिये उसे परिश्रम करना पड़ता है। ठीक

इसी प्रकार जब पुण्यों का फल समाप्त हो जाता है तो जीव फिर इस संसार के दुखों को प्राप्त होता है। केवल पुण्यवान् कर्म जो तप, यज्ञ, और दानादि हैं उन ही के करने से जीव मुक्त नहीं हो सकता। ऐसा जान कर कि संसार के सब पदार्थ नाशवान् हैं केवल एक आत्मा ही अविनाशी है और उसी को प्राप्त होना चाहिये, जब इस जीव को इस लोक अथवा परलोक के सब सुखों की इच्छा जाती रहती है; और विषयों से घृणा होने लगती है तब वह पुरुष वैराग्यवान् कहा जाता है। वैराग्य उत्पन्न होने पर कोई महापुरुष तो संन्यास के द्वारा ज्ञान योग को प्राप्त हो जाते हैं। और दूसरे लोग कर्म योग के द्वारा उसी ज्ञान को प्राप्त होते हैं। अब कर्म योग का स्वरूप क्या है यह भी संक्षेप से कहते हैं। कर्म योग कर्म और ज्ञान के बीच की अवस्था है निश्चित कर्मों को अपना कर्त्तव्य समझ कर करना और उनके भले या बुरे फल में आसक्ति न रखना ही कर्म योग कहलाता है। कर्म के फल को त्याग कर कर्म करना ही कर्म योग है।

इस कर्म योग को करता हुआ पुरुष कालान्तर में उस ज्ञान को सहज ही प्राप्त कर लेता है कि जिस को प्राप्त होकर फिर यह जीव जन्म मृत्यु के बन्धन से छूट जाता है।

देखिये संसार में प्राणी मात्र के अन्दर सुख प्राप्ति की सहज इच्छा देखने में आती है। मनुष्य को छोड़ कर अन्य प्राणियों में तो कर्म का विवेक ही नहीं है परन्तु मनुष्य बुद्धि की प्रबलता से भले और बुरे कर्मों का विवेक कर सकता है। जिन की बुद्धि मोटी है वे तो चोरी इत्यादि पाप कर्मों के द्वारा ही सुख प्राप्त करने की आशा करते हैं। यह तो अत्यन्त निकृष्ट लोग हैं। किन्तु जिनकी समझ इन से कुछ अच्छी है वे यह

अर्थात् जो गीता को जाने वही योगी पुरुष है जो न जाने वह योगी कहाने योग्य नहीं, और वह गीता ही इस गीतायन का आत्मा है इस लिये यह गीतायन भक्त और मुमुक्षु लोगों को अवश्य गीता ही के समान कल्याणकारी है।

गीतायन रचना करी, निज मति के अनुसार।
त्रुटि न धरहिं मन विज्ञ जन, करहिं विवेक विचार॥

—देवदत्त

गीतायन

परमहंस स्वामी योगानन्द (आलू वाले बाबा)
बेलनगंज (लालघाट)-आगरा।

अर्पण पत्रिका

श्री गुरु योगानन्द वर, करहिं सदा विश्राम ।
नगर आगरा यमुन तट, लाल घाट सुखधाम ॥

गीता सुमन मनोहर ले ले काव्य तार गुहि हार किया ।
कुसुमावली वही गीतायन गुरु ! तयार उपहार किया ॥
अमित सकुच सानन्द रावरी भेट उसी के करने को ।
आया है यह दास आपका शिर चरणों में धरने को ॥
हो सहर्ष स्वीकार नाथ ! शुभ अशिष दे कल्याण करो ।
विमल विवेक विलोचन देकर भव बाधा अज्ञान हरो ॥

शरणागत—

देवदत्त ।

ओ३म्

गीतायश

प्रथम अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच

धर्म क्षेत्र कुरु क्षेत्र महँ, गमन कीन्ह रण हेत ।
पाण्डु पुत्र अरु मम सुतन, निज निज सैन्य समेत ।।

धर्म का क्षेत्र ऐसा जो कुरुक्षेत्र है, वहां मेरे पुत्र और पाण्डु के पुत्र दोनों अपनी अपनी सेना सहित लड़ने के लिये गये हैं ।

कहा कीन्ह तहँ जाय, किमि पुनि रण रचना करी ।
संजय कहु समुझाय, समाचार विस्तार युत ।।

हे संजय ! कुरुक्षेत्र में जाकर के फिर उन्होंने क्या किया, किस प्रकार लड़ाई का संचालन किया, यह सब समाचार विस्तार से समझा कर कहो ।

कीन्ह प्रश्न धृतराष्ट्र जब, उत्सुकता के साथ ।
कहन लगे संजय तबहिं, रण रचना की गाथ ।।

जब राजा धृतराष्ट्र ने उत्कण्ठा से यह प्रश्न किया तो संजय लड़ाई की रचना की कथा इस प्रकार कहने लगे ।

कुरु सेना चतुरंग सुहाई * एक ओर रणथल महँ छाई ॥
पाण्डवअनी घनी अति भारी * दूसर ओर समर कहँ ठारी ॥

संजय ने कहा कि एक तरफ़ चतुरंगिणी कौरव सेना लड़ाई के मैदान में फैली हुई थी, और दूसरी तरफ़ पाण्डवों की बड़ी भारी और घनी सेना लड़ाई के लिये खड़ी थी।

दुहुँ दल रणमहँ लागहिं कैसे * सुर अरु असुर समर महँ जैसे ॥
तब दुर्योधन रिपु दल देखी * गुरु सन बोलिउ बचन विशेषी ॥

पाण्डव और कौरवों के दोनों दल लड़ाई के लिये कैसे सजे हुये थे। मानों कि देवासुर संग्राम हुआ चाहता है। तब राजा दुर्योधन शत्रुदल को देख कर गुरु द्रोणाचार्य के पास जाकर कहने लगे।

पाण्डव सैन्य लखहु गुरु भारी * द्रुपद पुत्र तव शिष्य सवाँरी ॥
इहां शूर बहु भीम समाना * अर्जुन सरिस धनुर्धर नाना ॥

हे गुरु! आप इस भारी पाण्डव सेना को देखिये इसको राजा द्रुपद के पुत्र और आप के शिष्य धृष्टद्युम्न ने सम्हाला है, (व्यूह रचित किया है) इसमें भीम के समान बहुत से शूरवीर हैं और अर्जुन के समान बहुत से धनुष विद्या में कुशल हैं।

महारथी विराट युयुधानू * काशीराज द्रुपद बलवानू ॥
पुरुजित कुन्तिभोज रणधीरा * धृष्टकेतु शैवी बलवीरा ॥

महारथी विराट्, युयुधानु, काशी का राजा, बलवान् राजा द्रुपद, पुरुजित, रण कुशल कुन्तिभोज, धृष्टकेतु, श्रेष्ठ वीर शैव्य, यह सब राजाओं के नाम दुर्योधन ने कहे।

युधामन्यु विक्रान्त विशाला * चेकितान उतमोज नृपाला ॥
द्रौपदि पुत्र सुभद्रा नन्दन * महारथी सब ही रिपु गंजन ॥

और भी राजा लोगों के नाम यह हैं, युधामन्यु, महाराजा विक्रान्त, चेकितान, उत्तमौजा, द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु, यह सब ही महारथी और शत्रुओं का नाश करने वाले हैं।

मम सेना के वीर प्रधाना * अब सुनिये कछु दया निधाना ॥
गुरुवर आप भीष्म रणधीरा * कर्ण विकर्ण जयद्रथ वीरा ॥
कृपाचारि अरु अश्वत्थामा * सोमदत्त आदिक बलधामा ॥

हे कृपानिधान ! अब मेरी सेना के मुख्य वीरों के नाम सुनिये। उनमें श्रेष्ठ गुरु आप, रणधीर भीष्म पितामह, वीर कर्ण, विकर्ण, जयद्रथ, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और सोमदत्त यह सब ही महान् बलवान् हैं।

औरहु बहुतक शूरमाँ, युद्ध कुशल बलवान।
मम हित निज तन तजन कहँ, उद्यत कृपानिधान ॥

हे आचार्य! और भी बहुत से युद्ध करने में चतुर शूरवीर बलवान् मेरे लिये अपने प्राण त्यागने को तैयार हैं।

भीषम सेनापति ममओरी * सेन न समरथ लागइ मोरी ॥
नायक पुनि उत भीम कठोरा * रिपु दल बल मुहि लागु अथोरा ॥
निज निज ठाँव खड़े जन जोई * भीष्म सहाय करहु मिलि सोई ॥

मेरी तरफ़ तो भीष्म पितामह सेनापति हैं, फिर भी मेरी सेना समर्थ नहीं लगती। कठोर कर्मों को करने वाले भीम उधर सेना-पति हैं तोभी शत्रु दल की ताक़त मुझे बहुत काफ़ी मालूम पड़ती है। अपनी अपनी जगह पर जो लोग खड़े हैं वे सब मिल कर भीष्माचार्य की सहायता करें अर्थात् आज्ञा मानें।

तब भीषम करि केहरि नादा * शंख बजायउ परम प्रसादा ॥
जिमि दुरियोधन हर्षित होई * होहिं सचेत और सब कोई ॥

तब भीष्म ने सिंहनाद करके बड़ी प्रसन्नता से शंख बजाया। जिससे राजा दुर्योधन प्रसन्न हों, और सब कोई युद्ध के लिये सचेत हो जायँ।

भेरि नगारे शंख मृदंगा * बजन लगे तब एकहि संगा ॥
इत कौरव दल बजहिं निशाना * शब्द भयंकर गगन समाना ॥

तब शंख, मृदंग, भेरी, नगाड़े और रणसिंहा आदि बाजे एक साथ बजने लगे। इधर कौरव दल में बाजे बजते थे और एक भारी गुञ्जार आकाश में होती थी।

स्यन्दन एक सजिउ उत भारी * सुन्दर लगे श्वेत हय चारी ॥
रथी भयउ अर्जुन धनुधारी * चतुर सारथी कृष्ण मुरारी ॥
पारथ हरि रथ सोहत कैसे * जीव ब्रह्म अरु माया जैसे ॥

उधर पाण्डवों की तरफ़ एक बड़ा रथ सजा हुआ था जिसमें सुन्दर चार सफ़ेद घोड़े लगे हुए थे। अर्जुन उस रथ में बैठे और उनके चतुर सारथी कृष्ण भगवान् हुए। अर्जुन कृष्ण और वह रथ कैसा सुन्दर लगता था कि जैसे जीव और ईश्वर भाव माया के आधार से प्रतीत होता है।

पुनि ते शंख बजावन लागे * नाम सुनहु तिन कर इमि आगे ॥
पाञ्चजन्य हृषिकेश बजायउ * देवदत्त अर्जुन कर गायउ ॥
पौण्ड्र नाम कर भारी शंखा * भीम बजायउ हुइ निरबंका ॥
कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर राजा * शंख अनन्त विजय तिन बाजा ॥

वे भी (पाण्डव) भी अपने-अपने शंखों को बजाने लगे, उन शंखों के नाम इस प्रकार हैं-हृषिकेश (कृष्ण) ने पाञ्चजन्य को, अर्जुन ने देवदत्त नामक शंख को, तथा भीम ने पौंड्र नामक शंख को, और राजा युधिष्ठिर ने अनन्त विजय नामक शंख को बजाया।

मणि पुष्पक सहदेव ने, नकुली राज सुघोष।
अपने अपने शंख सब, बाजत भे निरदोष॥

सहदेव ने मणिपुष्पक नाम के शंख को बजाया। नकुल राजा ने सुघोष नाम के शंख को बजाया।

काशी राज विपुल धनुधारी * सिंधु नरेश महारथ भारी॥
धृष्टद्युम्न विराट नृपाला * सात्यकि आदि अजित महिपाला॥
द्रौपदि सुत अरु द्रुपद महीपा * महाबाहु अभिमनु कुल दीपा॥
पृथक पृथक इन शंख बजायउ * शब्द कठोर खमण्डल छायउ॥

बड़े धनुर्धारी काशी के राजा, बड़े महारथी सिंधु देश के राजा, धृष्टद्युम्न, राजा विराट्, कभी पराजित न हुए ऐसे राजा सात्यकि, द्रौपदी के पुत्र, राजा द्रुपद, कुल के दीपक महाबाहु अभिमन्यु; इन सब ने अलग अलग शंख बजाया, जिससे एक भारी आवाज़ हुई और आकाश में छा गई।

प्रति धुनि भई भयानक भारी * कौरव हृदय विदारन हारी॥
तब देखिउ अर्जुन रिपु ठाढ़े * धनुप चढ़ाय शस्त्र पुनि काढ़े॥

आकाश में उस शब्द की बड़ी भारी प्रतिध्वनी हुई जो कौरवों के हृदय को विदीर्ण करने वाली थी। उस समय अर्जुन ने शत्रुओं को धनुप उठाकर शस्त्र निकाले लड़ने को तय्यार खड़े हुए देखा।

पुनि माधव प्रति कह सो टेरी * नाथ सुनिय इक विनती मेरी॥
दुहुँ सेनन के बिच लै जाई * मम रथ रोपहु केशव राई॥

तब अर्जुन श्रीकृष्ण से कहने लगा—हे मधुसूधन! आप मेरी एक विनय सुनिये। वह यह कि दोनों सेनाओं के बीच में आप मेरे रथ को लेजाकर खड़ा कर दीजिये।

जिमि देखौं रिपु दल इकबारा * किन किन होइहि युद्ध हमारा ॥
देखौं विपुल वीर जे आए * सकल ओर रण थल महँ छाए ॥
पुनि दुरियोधन आदिक भाई * मानहि मूढ़ जु समर भलाई ॥

जिससे कि मैं शत्रुओं के दल में एक बार देखूं कि किन किन से हमारा युद्ध होगा। और बड़े बड़े वीर जो रणभूमि में चारो तरफ़ फैले हुए हैं, उनको देखूं। तथा दुर्योधन आदिक भाइयों को भी देखूं जो मूर्ख लड़ाई में ही कुशल समझते हैं।

यह सुनि श्री भगवान ने, सत्वर स्यन्दन लाय।
दोउ दलन के बीच ही, ठाढ़ो कीन्ह बताय ॥

यह सुन कर श्रीकृष्ण भगवान् ने शीघ्र ही रथ लाकर दोनों सेनाओं के बीच ही में यह बतलाते हुए खड़ा कर दिया।

अर्जुन लखहु कहत बनवारी * जमा भयउ कौरव दल भारी ॥
सन्मुख भीष्म द्रोण नृप सारे * खड़े सबहि निज शस्त्र सवाँरे ॥

तब बनवारी कहने लगे कि हे अर्जुन इस जमा हुए कौरव-दल को तुम देखो। तुम्हारे सामने भीष्म, द्रोण, और सब राजा लोग अपने शस्त्र सम्हाले हुए (लड़ने के लिये) खड़े हैं।

सुनि अस मोरमुकट के वचना * देखन लगे पार्थ रण रचना ॥
तहँ देखत सो दुहुँ दल माहीं * निजकुलछांड़ि आन नर नाहीं ॥

ऐसे मोरमुकट के वचन सुन कर अर्जुन लड़ाई की रचना को देखने लगे। वहाँ दोनों दलों के बीच में अर्जुन क्या देखते हैं कि अपने कुल को छोड़ कर कोई भी दूसरा पुरुष नहीं है।

गुरु पितु पुत्र सगे निज भाई * चचा भतीजे ससुर जमाई ॥
पौत्र पितामह मातुल सारे * सुहृद मित्र कुल वृद्धहु वारे ॥

गुरु हैं, पिता हैं, पुत्र हैं, अपने सगे भाई हैं, चचा हैं, भतीजे

हैं, श्वसुर हैं, जमाई हैं, बाबा हैं, नाती हैं, मामा हैं, साले हैं, प्यारे हैं, मित्र हैं, कुल के बड़े बूढ़े हैं तथा छोटे भी हैं।

सब सम्बन्धी सखा सनेही * नातेदार सगे अपने ही ॥
लखि बोलिउ अर्जुन बलधारी * सुनिये विनती कृष्ण मुरारी ॥

और सब अपने ही सम्बन्धी हैं, साथी हैं, और सगे रिश्तेदार हैं। उन सबको देखकर बलवान् अर्जुन कहने लगे कि हे कृष्ण! आप मेरी विनय को सुनिये।

मैं परिवार लखहुँ निज ठाढ़ा * निश्चय समर लागि सो बाढ़ा ॥
इनहिं देखि जस मम गति होई * नाथ सुनिय अब चित दै सोई ॥

हे कृष्ण! मैं अपने परिवार को सन्मुख खड़े देखता हूँ, जो लड़ाई के लिये उद्यत है। इन लोगों को देख कर जो मेरी दशा होती है, हे स्वामी आप उसे ध्यान से सुनिये।

गात सिरात सुखात मुखो तनु कम्प छुटो लरजावत है ॥
रोम खरे तुच हू पजरे मन चंचल और भ्रमावत है ॥
हाथन ते धनु जात गिरो अँधियार भयो सु लखावत है ॥
बैठन की सकता न रही इमि शोक समूह जरावत है ॥

अर्जुन कहने लगा कि हे कृष्णजी शोक के कारण मेरी देह शिथिल होती है, मुख सूखा जाता है, शरीर में रोमाञ्च होता है, और काँपता है, मेरे शरीर की त्वचा जलती हुई मालूम होती है, और चंचल मन भ्रमित होता है। हाथों से गाण्डीव धनुष गिरा पड़ता है और आँखों के सामने अँधेरासा दीखता है। और मुझे बैठने की सामर्थ नहीं जान पड़ती।

फल विपरीत लखात मुहि, केशव कुल के नाश।
स्वजनहि रण संहारि कै, कवन भलाई आश ॥

हे केशव ! कुल के नाश होने से मुझे उलटा ही परिणाम दीखता है। अपने ही लोगों को लड़ाई में मार कर भलाई की क्या आशा हो सकती है ?

राज नहीं सुख साज नहीं ब्रजराज नहीं चहिये प्रभुताई॥
ना चहिये धन धाम धरा पुनि ना चहिये भवभूति भलाई॥
कीरति भोग विजै न चहैं अपकीरति हू भल होय हँसाई॥
जीवन की हम आश तजी कुलको यदि नाशभयो यदुराई॥

हे ब्रजराज ! हम को न राज्य चाहिये न सुख और ऐश्वर्य चाहिये। धन, महल, और भूमि भी हमको नहीं चाहिये और संसार की भलाई और विभूति भी हम नहीं चाहते; कीर्ति भोग और विजय भी हम नहीं चाहते, चाहे भले ही संसार में हमारी हँसी और अपकीर्ति हो। हे कृष्ण ! यदि कुल का नाश हुआ तो हम अपने जीवन की भी आशा नहीं करते।

राज भोग सुख सम्पति सारी * जिनहि लागि हमसब बलिहारी॥
ते पुनि खड़े प्राण धन त्यागे * समर करन कहँ अति अनुरागे॥

जिन के ऊपर हम राज्य भोग और सारी सुख सम्पति निछावर करने के लिये तैयार हैं, वे (धृतराष्ट्र के पुत्र) अपने प्राण और धन की ममता को त्याग कर लड़ाई करने के लिये उद्यत हैं।

गुरु पितु पुत्र पितामह नाती * मातुल श्वसुर श्याल संहाती॥
भल मारहिं मुहि मिलि सब कोई * इनहिं न मैं मारौं बरजोई॥

हमारे गुरु, पिता, पुत्र, बाबा, नाती, मामा, ससुर, साले यह सब मिल कर मुझे भले ही मारें; किन्तु इन को मैं जबर्दस्ती कभी न मारूँगा।

का बापुरी भूमि के भाये * हतहु' न मैं तिरलोकिहु पाये ॥
यद्यपि ये सब आताताई * तदपि हते नहिं दीख भलाई ॥

इनको मैं विचारी पृथ्वी के लिये तो क्या त्रिलोकी का राज्य भी मिले तो न मारूँगा। यद्यपि ये सब लोग आततताई हैं, (शस्त्र लेकर दूसरे को मारने को तैयार हो उसे आततताई कहते हैं और उसे मारने से शास्त्र में पाप नहीं कहा) तो भी मारने में कोई भलाई नहीं दीखती।

मारें ते पुनि पातक होई * या हित नीक न मारबसोई ॥
किहि सुख लागि हतौं निज भाई * माधव नीक न करब लराई ॥

और मारने से पाप होता है इसलिये न मारना ही ठीक है। मैं अपने भाइयों को किस सुख की कामना के लिये मारूँ? हे माधव ! लड़ाई न करना ही अच्छा है।

नाश किये कुल पातक भारी * मित्र द्रोह पुनि होय मुरारी ॥
राज लोभ वश ये नहिं जानहिं * नाश करहिं कुल दोष न मानहिं ॥

हे मुरारी ! कुल को नाश करने से भारी पाप होता है और आपस में द्रोह उत्पन्न होता है। यह लोग राज्य लोभ के कारण इस बात को नहीं जानते; कुल का नाश करने को उद्यत हैं और उसमें कुछ दोष नहीं मानते।

माधव तौ पुनि जानिके, किमि करिये यह पाप ।
कुल नाशे पातक लगे, अरु बाढ़इ संताप ॥

हे माधव ! तो फिर ऐसा जान कर इस पाप को क्यों करना चाहिये? कुल के नाश करने से पाप होता है और शोक उत्पन्न होता है।

कुल क्षय भये नसहिं कुल धरमा * धर्म नसे पुनि होय अधरमा ॥
तब कुल नारि होहिं व्यभिचारी * संकर वर्ण जनावन हारी ॥

कुल का नाश होने से कुल के धर्म नष्ट हो जाते हैं, और धर्म नष्ट होने से अधर्म होने लगता है। अधर्म होने से कुल की स्त्रियाँ व्यभिचारी हो जाती हैं, और तब वे वर्ण संकरों को उत्पन्न करती हैं।

कुल अरु कुल घातक कहँ संकर * अवशि पठावहि नरक भयंकर ॥
पिण्ड दान कर क्रिया लुपाई * पितरहु गिरहिं नरक महँ आई ॥

वह वर्णसंकर कुल और कुल के नाश करने वाले को रौरव नर्क में ले जाने वाला होता है। वर्णसंकर उत्पन्न होने से पिण्ड-दान की क्रिया का भी नाश हो जाता है, और ऐसा होने से पितर भी नर्क में आ गिरते हैं।

जाति धर्म कुल धर्म नशावहिं * संकर वरन बहुरि उपजावहिं ॥
यह सब दोष भये कुल नाशा * पावहि मनुज नरक महँ वासा ॥

कुल का नाश होने से जाति धर्म और कुल धर्मों का लोप हो जाता है, वर्णसंकरों की उत्पत्ति होती है और मनुष्य नर्क को प्राप्त होते हैं, यह अनेक दोष होते हैं।

कीन्ह चहत हम पातक भारी * राज लोभ वश स्वजनहि मारी ॥
मानस पाप कीन्ह हम एही * अवशि दण्ड चह कारण तेही ॥

हम भारी पाप करने के लिये उद्यत हुए हैं, जो राज्य लोभ के कारण अपने ही आदमियों को मारना चाहते हैं। हमने मानस-पाप किया है इसका दण्ड हमको जरूर मिलना चाहिये।

शस्त्र रहित मुहि मारहिं आई * धृतराष्ट्र के सुत बरियाई ॥
इह सन अधिक न मम कुशलाई * जो इमि हतहिं मोहि रण भाई ॥

धृतराष्ट्र के पुत्र आकर मुझ शस्त्र रहित को जबर्दस्ती मार डालें तो इससे अधिक मेरे लिये कोई कुशल नहीं है जो इस प्रकार मेरे भाई मुझे लड़ाई में मारें।

अस कहि अर्जुन समर महँ, त्यागि दीन्ह शर चाप।
रथ कर पाछिल भाग महँ, बैठिउ सह सन्ताप॥

ऐसा कह करके लड़ाई के बीच में अर्जुन ने धनुष और बाण को त्याग दिया और रथ के पिछले भाग में शोक सहित बैठ गये।

इति प्रथम अध्याय।

द्वितीय अध्याय
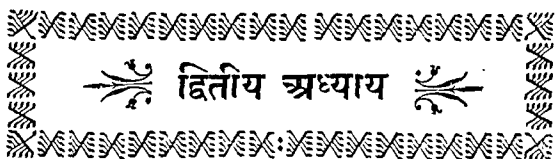
अर्जुन करहिं विषाद बहु, कुल नाशे कर सोच ।
हिरदय कातर नीर दृग, मन महँ अति संकोच ॥

कुल के नाश होने का सोच करके अर्जुन शोक को प्राप्त हुए। उनका हृदय दुख से कातर था, मन सङ्कुचित था, और नेत्रों में आंसू भरे हुए थे।

तब सो दशा देखि मधुसूदन * लगे करन अर्जुनहिं प्रबोधन ॥
पारथ कहँ कायरता पाई * संकट समय विषाद जनाई ॥

तब श्रीकृष्णजी ऐसी दशा देख कर अर्जुन को समझाने लगे। हे पार्थ! यह कायरपन तुमको कहाँ से प्राप्त हुआ है, ऐसे संकट के समय में तुम क्यों शोकित होते हो?

अधम मनुज इमि भल निरधारा * तुमहिं सुहात न निबल विचारा॥
कायरता अति दुखद विचारी * स्वर्ग नाश कर कीरति हारी ॥

नीच पुरुष इस प्रकार का निर्णय भले ही करें पर तुमको ऐसे निर्बल विचार शोभा नहीं देते। कायरता को अत्यन्त दुख देने वाली विचार किया गया है, वह (जीवित अवस्था में) कीर्ति का नाश करने वाली है, और (मृत्यु के उपरान्त) स्वर्ग प्राप्ति का नाश करने वाली है।

तुम विख्यात वीर जग भाई * तुमहिं न सोह तात कदराई ॥
मन निरबलता दूरि हँकारी * पुनि गाण्डीव धरहु धनुधारी ॥

हे भाई तुम जगत में प्रसिद्ध वीर हो, तुमको कायरता

शोभा नहीं देती। इसलिये मन की कमजोरी को दूर करके हे धनुर्धारी अर्जुन ! फिर गाण्डीव को धारण करो।

अरजुन कह सुनिये भगवाना * मम उर संशय एक महाना ॥
भीष्म द्रोण गुरु पूजा लायक * युद्ध करिय किमि गहि धनुसायक ॥

अर्जुन कहने लगे कि हे भगवान् सुनिये मेरे मन में एक बड़ी शंका है। वह यह कि भीष्म और गुरु द्रोणाचार्य आदि पूजा करने के लायक़ हैं उनसे धनुष बाण लेकर किस तरह लड़ना चाहिये ?

लोभी गुरु जन हू कहँ मारी * रुधिर लिप्त धृक राज्य मुरारी ॥
भल भिक्षा करि जग निरवाहा * पै धिक गुरुजन मारन चाहा ॥
पुनि परिणाम न जानहि कोई * विजय पराजय केहि कर होई ॥

हे कृष्ण ! लोभी गुरुओं को मार कर रुधिर से सने हुए राज्य भोग को धिक्कार है। भिक्षा करके जगत् में गुजर करना अच्छा है, किन्तु गुरु लोगों को मारने की इच्छा को धिक्कार है। और यह भी निश्चित मालूम नहीं है कि हम उनको जीतेंगे, अथवा वे ही हमको जीतेंगे अर्थात् हार जीत किसकी होगी ?

जिनहिं न मारन की तनिक, उर इच्छा वृषकेतु।
वेही सुत धृतराष्ट्र के, खड़े समर के हेतु ॥

हे कृष्ण ! जिनको मारने की हमारे मन में तनिक भी इच्छा नहीं है, वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र लड़ने के लिये तयार खड़े हैं।

कृपा दोष मम हृदय गुसाईं * बूझउँ तुमहिं मूढ़ की नाईं ॥
मैं तव शरण शिष्य हरि तोरा * करि उपदेश हरहु भ्रम मोरा ॥

हे कृष्ण ! दयारूप दोष मेरे हृदय में हो आया है इस कारण मूढ़ हुआ मैं तुम से पूछता हूं। हे माधव ! मैं तुम्हारी शरण, हूं

और तुम्हारा शिष्य हूं, तुम उपदेश करके मेरा भ्रम (अज्ञान) दूर करो।

धर्म कहा निश्चित नहिं मेरे * शोक मोह भ्रम अतिशय घेरे॥
तुम सर्वज्ञ सखा सब कोई * हित कर होय कहहु प्रभु सोई॥

मुझे बहुत शोक, मोह और भ्रम घेरे हुए हैं और धर्म क्या है यह भी मैं ठीक ठीक नहीं जानता। तुम सब कुछ जानते हो, मेरे सखा हो, और मेरा सर्वस्व हो, हे प्रभु जो बात मेरे हित की हो वह मुझसे कहिये।

अमित शोक मम हृदय जरावा * नहिं विषाद कर अन्त लखावा॥
शोक न सुरपुर राजहु नाशा * इक छत भूमि कहहु का आशा॥

बड़ा भारी शोक मेरे हृदय को जलाता है, इसका नाश होना मुझे दीख नहीं पड़ता। यह शोक स्वर्ग का राज्य पाने से भी नहीं नाश हो सकता, फिर चक्रवर्ती भूमि के राज्य पाने से इसके नाश होने की क्या आशा है?

गुडाकेश कह केशव पाहीं * मैं नहिं लरिहौं सुनहु गुसाईं॥
अस कहि मूक रहा सो होई * चित्र लिखी मनु मूरति कोई॥

तब अर्जुन कृष्ण से कहने लगे कि हे स्वामी सुनिये मैं नहीं लड़ूंगा। ऐसा कह कर वह चुप हो गया और चित्र पर खिंची मूर्ति के समान होकर बैठ गया।

अधिक अधीर किरीटिहि देखी * दूर करन हित मोह विशेषी॥
तब भगवान सहज हँसि बोले * ज्ञान भक्ति युत वचन अमोले॥

जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ज्यादा अधीर देखा तो विशेष मोह को दूर करने के लिये भगवान् सहज ही हँसते हुए ज्ञान और भक्ति युक्त वचन बोले।

नहिं सोचन के योग्य जो, ताकहँ सोचहु तात।
तिहु पै अर्जुन करहु तुम, ज्ञानिन के सम बात॥

हे प्रिय जो बात सोचने के योग्य नहीं है, उसका तो तुम सोच करते हो, और इस पर भी तुम ज्ञानी लोगों के समान बातें करते हो।

जीवन मरण शोक नहि ताके * ज्ञान प्रकाश भयउ उर जाके॥
हम तुम और सकल नर नाहू * प्रथमहु जन्म लीन्ह सब काहू॥

जिस मनुष्य के हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाता है वह तो जीने अथवा मरने का शोक नहीं करता। हमने, तुमने और इन राजा लोगों ने पहिले भी जन्म लिया है।

कहु आगे का जनम न लेहीं * क्षर शरीर पर अक्षर देही॥
जिमि देही यह देह कुमारा * यौवन जरा आदि निरधारा॥
तिमि सो पावहि आन शरीरा * तहां न मोहत पण्डित धीरा॥

और हम सब लोग कहो क्या फिर जन्म न लेंगे? अर्थात् लेंगे क्योंकि शरीर नाशवान् है, पर आत्मा अविनाशी है। जिस प्रकार इस शरीर में जीव बाल्य, यौवन और वृद्धावस्था को प्राप्त होता है। इसी प्रकार दूसरा शरीर पाने पर भी सब अवस्थाएँ होती हैं, इस विषय में बुद्धिमान् लोग मोह को प्राप्त नहीं होते।

शीत ऊष्ण अरु सुख दुख जोई * इन्द्रिय जनित मानिये सोई॥
नहिं सत सो पुनि उपजि नशाहीं * तिनकर वेग सहहु मनमाहीं॥

ठण्ड गरमी, और सुख दुख, जो कुछ भी है सो सब इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न होता है। उनमें सत्यता कुछ नहीं है वे उत्पन्न होते हैं और नाश हो जाते हैं, उनके वेग को मन में सहन करना चाहिये।

इन्द्रिय विषय न जिहि विचलाहीं * लोभमोह मद मत्सर नाहीं ॥
सुख दुख सम जो जन मन मानहिं * रागद्वेष करलेश न आनहिं ॥
सो जन योग्य मोक्ष के होई * जीवनमुक्त कहावहि सोई ॥

जिस पुरुष को इन्द्रियों के विषय विचलित नहीं करते और जिसको लोभ, मोह, अहंकार और डाह नहीं है। जिसको सुख और दुख समान ही हैं और जिसके मन में राग और द्वेष नहीं हैं वह पुरुष मोक्ष के योग्य होता है और जीवन मुक्त कहलाताहै।

असत वस्तु कर भाव नहिं, नहिं सत केर अभाव।
इमि दुहून कर तत्ववित, न्यारो कीन्हिउ न्याव ॥

जो वस्तु असत्य है ,उसकी है ऐसी प्रतीत नहीं होती और जो वस्तु सत है उसकी नहीं है ऐसी प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार दोनों (सत्य और असत्य) का निर्णय तत्त्व के जानने वालों ने किया है।

आतम व्यापक सब महँ जोई * सो अव्यय कहु नाश न होई ॥
ताकर देह अनित उर आनहु * केवल आत्महिं सत पहिचानहु ॥

जो आत्मा सबमें व्यापक है वह अव्यय है, अर्थात् कभी नाश नहीं होता। उस आत्मा के देह अनित्य हैं केवल आत्मा ही सत्य है, ऐसा जानना चाहिये।

नहिं प्रमाण गत सो अविनाशी * जो सत चेतन सबसुख राशी ॥
अस जिय जानि लरहु तुम ताता * औरहुसुनहु कहउँ कछुबाता ॥

वह अविनाशी आत्मा प्रमाणों से जाना नहीं जा सकता (आत्मा प्रमा ज्ञान का विषय नहीं है अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जाता) यह आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, हे तात अपने मन में इस बात को समझ कर तुम लड़ो तुम से और भी कुछ बात कहते हैं सो सुनो।

आत्महिं घातक मानहिं एका ॐ हन्यमान तिमि अपर अनेका ॥
समीचीन नहिं उभय विचारा ॐ आत्मा मरइ न मारन हारा ॥

कोई आत्मा को मारने वाला जानते हैं, और कोई आत्मा को मर जाने वाला जानते हैं। हे महाबाहो! यह दोनों मत ठीक नहीं हैं, क्योंकि यह आत्मा न तो मरता है न किसी को मारता है।

नहिं पुनि जनमत मरत न सोई ॐ प्रथम भयउ नहिं पुनि नहिं होई॥
अज नित शाश्वत परम पुराना ॐ देह नसे नहिं आत्म नशाना॥

यह आत्मा न जन्मता है, न मरता है पहिले कभी उत्पन्न हुआ हो ऐसा नहीं है, और फिर कभी उत्पन्न होगा ऐसा भी नहीं है। यह आत्मा अजन्मा है, नित्य है, प्राचीन है, देह के नाश होने से आत्मा का नाश नहीं होता।

जो आत्महिं जानत अविनाशी ॐ अज अव्यय नित स्वयं प्रकाशी ॥
सो काहू कहँ कहु किमि मारा ॐ अथवा हनन करावन हारा ॥

जो आत्मा को अविनाशी जानता है, अजन्मा जानता है, नित्य जानता है, अपने आप प्रकाश करने वाला जानता है। वह कहो किस तरह किसी को मारता है, और किस तरह किसी को मरवा सकता है।

वसन पुराने त्यागि जिम, पहिरत नूतन लाय।
धारत नव तन जीव इमि, जीरण देह दुराय ॥

जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को छोड़ कर मनुष्य नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, इसी तरह यह जीव भी पुराने शरीर को त्याग कर नये देह को धारण कर लेता है।

जीवहि शस्त्र सकहिं नहिं मारी ॐ पावक हू पुनि सकहि न जारी ॥
किमपि न ताहि गरावहि नीरा ॐ सो नहिं कतहुं सुखाव समीरा ॥

इन्द्रिय विषय न जिहि विचलाहीं * लोभमोह मद मत्सर नाहीं ॥
सुख दुख सम जो जन मन मानहिं * रागद्वेष करलेश न आनहिं ॥
सो जन योग्य मोक्ष के होई * जीवनमुक्त कहावहि सोई ॥

जिस पुरुष को इन्द्रियों के विषय विचलित नहीं करते और जिसको लोभ, मोह, अहंकार और डाह नहीं है। जिसको सुख और दुख समान ही हैं और जिसके मन में राग और द्वेष नहीं हैं वह पुरुष मोक्ष के योग्य होता है और जीवन मुक्त कहलाताहै।

असत वस्तु कर भाव नहिं, नहिं सत केर अभाव।
इमि दुहून कर तत्ववित, न्यारो कीन्हिउ न्याव ॥

जो वस्तु असत्य है ,उसकी है ऐसी प्रतीत नहीं होती और जो वस्तु सत है उसकी नहीं है ऐसी प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार दोनों (सत्य और असत्य) का निर्णय तत्त्व के जानने वालों ने किया है।

आतम व्यापक सब महँ जोई * सो अव्यय कहु नाश न होई ॥
ताकर देह अनित उर आनहु * केवल आत्महिं सत पहिंचानहु ॥

जो आत्मा सबमें व्यापक है वह अव्यय है, अर्थात् कभी नाश नहीं होता। उस आत्मा के देह अनित्य हैं केवल आत्मा ही सत्य है, ऐसा जानना चाहिये।

नहिं प्रमाण गत सो अविनाशी * जो सत चेतन सबसुख राशी ॥
अस जिय जानि लरहु तुम ताता * औरहुसुनहु कहउँ कछुवाता ॥

वह अविनाशी आत्मा प्रमाणों से जाना नहीं जा सकता (आत्मा प्रमा ज्ञान का विषय नहीं है अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जाता) यह आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, हे तात अपने मन में इस बात को समझ कर तुम लड़ो तुम से और भी कुछ बात कहते हैं सो सुनो।

आत्महिं घातक मानहिं एका ॐ हन्यमान तिमि अपर अनेका ॥
समीचीन नहिं उभय विचारा ॐ आत्मा मरइ न मारन हारा ॥

कोई आत्मा को मारने वाला जानते हैं, और कोई आत्मा को मर जाने वाला जानते हैं। हे महाबाहो! यह दोनों मत ठीक नहीं हैं, क्योंकि यह आत्मा न तो मरता है न किसी को मारता है।

नहिं पुनि जनमत मरत न सोई ॐ प्रथम भयउ नहिं पुनि नहिंहोई॥
अज नित शाश्वत परम पुराना ॐ देह नसे नहिं आत्म नशाना॥

यह आत्मा न जन्मता है, न मरता है पहिले कभी उत्पन्न हुआ हो ऐसा नहीं है, और फिर कभी उत्पन्न होगा ऐसा भी नहीं है। यह आत्मा अजन्मा है, नित्य है, प्राचीन है, देह के नाश होने से आत्मा का नाश नहीं होता।

जो आत्महिं जानत अविनाशी ॐ अज अव्यय नित स्वयं प्रकाशी॥
सो काहू कहँ कहु किमि मारा ॐ अथवा हनन करावन हारा॥

जो आत्मा को अविनाशी जानता है, अजन्मा जानता है, नित्य जानता है, अपने आप प्रकाश करने वाला जानता है। वह कहो किस तरह किसी को मारता है, और किस तरह किसी को मरवा सकता है।

वसन पुराने त्यागि जिम, पहिरत नूतन लाय।
धारत नव तन जीव इमि, जीरण देह दुराय॥

जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को छोड़ कर मनुष्य नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, इसी तरह यह जीव भी पुराने शरीर को त्याग कर नये देह को धारण कर लेता है।

जीवहि शस्त्र सकहिं नहिं मारी ॐ पावक हू पुनि सकहि न जारी॥
किमपि न ताहि गरावहि नीरा ॐ सो नहिं कतहुं सुखाव समीरा॥

जीव को हथियार नहीं मार सकते, आग नहीं जला सकती, पानी नहीं गला सकता, और हवा नहीं सुखा सकती अर्थात् पंच-तत्व इस आत्मा का कुछ बिगाड़ नहीं सकते।

सूखत जरत गरत नहिं देही * अस्त्रहु भेदि सकत नहिं तेही।
थिरनित व्यापकअचलअकिञ्चिन*पुनिनहिंप्रकटकरियकिमिचिंतन।

यह आत्मा न सूखता है, न जलता है, न गलता है, न अस्त्र इसको भेद सकते हैं। यह आत्मा स्थिर है, नित्य है, सब जगह व्यापक है, अचल है, महान् है, प्रकट प्रतीत नहीं होता, इसलिये चिन्तन करने में नहीं आता।

निर्विकार इमि आत्महिं जानी * शोचन योग्य न कवनहु प्राणी ॥
जन्महिं मरहिं जीव नित जोई * तदपि शोक कर हेतु न कोई ॥

इस प्रकार आत्मा को विकार रहित, जान कर कोई भी प्राणी शोक करने के योग्य नहीं है, यदि जीव नित्य जन्मता है, और मर जाता है (ऐसा भी जो कोई मानता हो) तो भी कोई शोक करने का कारण नहीं है।

जन्मत कहँ मृत्युहु वरियाई * अवशि मृतक पुनि जन्महुँ पाई ॥
अटल नियम यह टरहि न टारे * व्यर्थहि शोक करहु किमि प्यारे ॥

जो जन्म लेता है उसको मृत्यु भी आती है, और जो मरता है उसको जन्म भी मिलता है। यह अटल नियम है जो टाला नहीं जा सकता, इसलिये हे प्यारे तुम व्यर्थ क्यों शोक करते हो?

भूत जन्म ते प्रथम न कोई * मृत्यु भये पुनि व्यक्त न सोई।
प्राणी वीचहि प्रकट दिखावा * तिन कर शोक कहा पछितावा ॥

जन्म से पहिले कोई प्राणी प्रकट नहीं होता, और मरने के बाद भी कोई प्रकट नहीं रहता, जन्म और मरण के बीच में

ही यह प्राणी केवल प्रकट दीखता है ऐसे प्राणियों के लिये क्या शोक करना चाहिए ? (जिस वस्तु का जो आदि और अन्त होता है उसका मध्य भी वही समझना चाहिये जो वस्तु आदि और अन्त में असत् है वह मध्य में भी असत् है वा प्रतीत मात्र है उसमें सत्यता कुछ नहीं।)

कहत सुनत समुझत कोउ, आतमहिं अचरज रूप।
सुनि गुनिहू नहिं जानहीं, इह कर तत्व स्वरूप॥

कोई आत्मा को आश्चर्य रूप कहता सुनता और समझता है, पर सुनकर और गुनकर भी इस आत्मा के तत्वस्वरूप को कोई नहीं जानता है।

देहन माहिं रहत जो देही * नित्य अवध्य सु मानहुँ तेही॥
करहु शोक किमि अस जिय जोई * शोचन योग्य भूत नहिं कोई॥

देहों में जो देही नाम आत्म रहता है उसको नित्य अर्थात् सदा काल में रहने वाला और वध के अयोग्य ही मानना चाहिये। ऐसा जान कर तुम क्यों शोक करते हो ? क्योंकि शोक करने योग्य तो कोई भी प्राणी नहीं है ।

लखि निज धर्महुं चलित न होऊ * धर्म युद्ध ते नीक न कोऊ॥
इमि यह युद्ध अचानक पानो * खुले कपाट स्वर्ग के मानो॥

अपने धर्म को विचार कर भी तुम को चलायमान न होना चाहिये (तुम्हारे लिये) धर्म युद्ध से अच्छा कुछ नहीं है। इस प्रकार से अचानक ही युद्ध का प्राप्त होना ऐसा है कि मानो स्वर्ग का दरवाजा खुल गया हो। (क्षत्री के लिये धर्म युद्ध से उत्तम और कोई धर्म नहीं ऐसे धर्म युद्ध में लड़कर मरने से स्वर्ग प्राप्त होता है यह भाव है।)

अस अवसर प्रिय पावत सोई ॐ भाग्यवान क्षत्रिय जन जोई ॥
अब जो धर्म समर नहिं करहू ॐ धर्म नशाय पाप ही भरहू ॥

हे प्रिय अर्जुन ! ऐसा मौक़ा भाग्यवान् क्षत्रियों को ही प्राप्त होता है। इस समय जो तुम धर्म युद्ध न करोगे तो तुम्हारा धर्म नष्ट होकर तुमको पाप ही लगेगा।

पुनि जग महँ अपकीरति होई * महा जनहिं मरणाधिक सोई॥
भय वश भागि गयउ रन छोरी* महारथी सब कहहिं वहोरी ॥

फिर संसार में तुम्हारी अपकीर्त्ति यानी बदनामी भी होगी। बड़े आदमियों के लिये बदनामी मरने से भी अधिक दुख देने वाली है। सब महारथी लोग कहेंगे कि अर्जुन डर के मारे लड़ाई छोड़ कर भाग गया।

सदा तोहि जे देत बड़ाई * सन्मुख तिनहिं पाव लघुताई॥
अनुचितकहिरिपु निन्दहिं तव बल*या सन दुखतर अपर न अनभल॥

जो महारथी (दस हज़ार योद्धाओं के साथ लड़ने वाले को महारथी कहते हैं) लोग तुझको सदा बड़ाई देते रहे हैं उनके सामने आज तू छोटे पन को प्राप्त होगा। तेरे शत्रु अनुचित शब्द कह कह कर तेरे बल पौरुष की निन्दा करेंगे इस से अधिक बुरी और दुख दाई कौन बात होगी ?

मृत्यु भई तो स्वर्ग है, विजय भये महि राज।
याहित कुन्ती पुत्र उठ, युद्ध करन के काज ॥

लड़ाई में यदि मरण हुआ तो स्वर्ग की प्राप्ति होगी, और अगर जीत हुई तो पृथ्वी का राज्य प्राप्त होगा, इसलिये हे अर्जुन! युद्ध करने के लिये उठ।

विजय पराजय लाभ अरु हानी*सुख अथवा दुख सम उर आनी॥
इमि समता गहि लरिहै जोई * निश्चय पातक लगइ न कोई ॥

हार और जीत, लाभ और हानी, सुख और दुख इनको मन में समान ही जानते हुऐ, इस प्रकार समता को धारण करके जो यदि लड़ाई करोगे तो तुमको कोई पाप न लगेगा।

ज्ञान योग यह कहा बुझाई * कर्म योग अब श्रृणु चित लाई ॥
पारथ ज्ञान जु हृदय प्रकाशै * कर्म पाश तव निश्चय नाशै ॥

यह ज्ञान योग तुझको समझा कर कहा, अब कर्म याग ध्यान देकर सुनो। हे पार्थ यदि यह ज्ञान तुम्हारे हृदय में उत्पन्न हो जाय तो तुम्हारा कर्म रूपी बन्धन नष्ट हो जाय (अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो)

जो यहि धर्महिं स्वल्पहु धारहि* महा कष्ट तिहि केर निवारहि ॥
कृत धर्मन कर नाश न होई * संकट बीच परइ नहिं कोई ॥

इस धर्म का थोड़ा सा आचरण भी महान् कष्ट से रक्षा करता है, ज्ञान योग द्वारा किये हुये धर्म का नाश नहीं होता है (अर्थात् आरम्भ किया हुआ यह धर्म यदि किसी कारण वश बंद भी हो जावे तो जितना हो चुका है उसका नाश नहीं होगा,) इस धर्म के आचरण के बीच में कोई संकट और बाधा नहीं पड़ा करते।

निश्चय रूप बुद्धि सो एका * निश्चय बिन बहु भेद अनेका ॥
मूढ़ कइहिं अति पुष्पित बाणी * बेद अर्थ बहु भांति बखानी ॥

इस कर्म योग में निश्चयात्मक बुद्धि एक ही प्रकार की होती है और निश्चय रहित बुद्धियाँ अनेक भेद भावों से युक्त होती हैं।

हे अर्जुन! अज्ञानी लोग वेदों के अर्थों को बहुत प्रकार से कह कर (उनका यथार्थ भेद न समझ कर) पुष्पित बाणी से कहते हैं:—

कर्महिं छाँड़ि नहीं कछु सारा * इमि ते करत अनेक विचारा ॥
कामी स्वर्गहि परम बखाना * जन्महिं केवल फलप्रद माना ॥

कि कर्म को छोड़ कर कोई वस्तु सार रूप नहीं है, इस प्रकार से वे (अज्ञानी लोग) अनेक विचारों को करते हैं। जिनके मन कामनाओं में लगे हुए हैं और जिनको स्वर्ग ही सबसे उत्तम गति प्रतीत होती है वे पुनर्जन्म को ही कर्म का फल देने वाला मानते हैं।

कर्म कहे बहु वेद महँ, भोग प्राप्ति के हेतु।
तिनहिं न केवल मानहूँ, भव वारिध कहँ सेतु ॥

वेदों में नाना प्रकार के कर्म कहे हैं वे भोग और ऐश्वर्य की प्राप्ति के अर्थ हैं। उन कर्मों को ही केवल संसार सागर के तरने के लिये पुल रूप न समझना चाहिये।

भोग विलास प्रसक्त महाना * विषयन हीं महँ चित्त लुभाना ॥
तिन कर हृदय किमपि नहिं आई * व्यवसायात्मिक बुद्धि सुहाई ॥

जिनका मन विषयों में लोलुप है और जो भोग विलास में अत्यन्त लगे हुए हैं उनके अन्तःकरण में सुन्दर निश्चयात्मक बुद्धि कभी नहीं उत्पन्न होती।

वेद त्रिगुण प्रति पादक ओहू * गुणातीत अरजुन तुम होहू ॥
योग क्षेम अरु द्वन्द्व विसारहु * होहु आत्म रत सद्गुण धारहु ॥

हे अर्जुन! वेद में तीन गुणों का वर्णन किया है, किन्तु तुम तो तीनों गुणों से परे की अवस्था को प्राप्त होओ। किसी चीज की प्राप्ति कैसे होगी, अपनी परवरिश कैसे होगी, इन चिन्ताओं को और नाना प्रकार के द्वन्द्वों को त्याग दो। अच्छे गुणों को धारण करो और अपने आत्मा में प्रीति वाले हो।

इच्छित जल जिमि मिलहि तलावा॥सागर हू पहँ तेतिक पावा॥
ब्रह्म ज्ञान इमि जो जन पावहिं॥सब वेदन कर फल अपनावहिं॥

जिस प्रकार से जितने जल की जरूरत हो उतना तालाव में मिल जाता है, और उतना ही समुद्र में भी मिल जाता है। इसी तरह जो मनुष्य ब्रह्म ज्ञान को पालेता है, उसको वेदों से होने वाला सारा फल प्राप्त हो जाता है।

तव अधिकार तु केवल करमा॥फल इच्छा कर नाहिंनधरमा॥
कर्म फलन कर चाह न कीजै॥नहिं अकर्म महँ पुनिचितदीजै॥

तेरा अधिकार तो केवल कर्म करने का है, फल की इच्छा करना तेरा धर्म नहीं। कर्म के फल की इच्छा न करना चाहिये, और अकर्म (आलसी के समान कुछ न करना) में चित न देना चाहिये।

करहु कर्म सब योगहि धारी॥कर्म संग पै तात निवारी॥
मानहुँ सिद्धि असिद्धि समाना॥समता ही कहँ योग बखाना॥

सब कर्मों को योग धारण करके करना चाहिये और कर्म करने के साथ उन कर्मों में प्रीति न रखनी चाहिये। किसी काम में कामियाबी और नाकामियाबी को बराबर ही समझना चाहिये क्योंकि समता ही को योग कहते हैं।

ज्ञान योग प्रति कर्म की, है गति तुच्छ महान।
बुद्धि योग आचरहु तजि, फल कर अनुसन्धान॥

ज्ञान योग के मुक़ाबले में कर्म अत्यन्त तुच्छ है, इसलिये बुद्धि योग अर्थात् ज्ञान योग का आचरण करना चाहिये, कर्म फल की इच्छा न करना चाहिये।

अविश कृपण कहिये पुनि तिनहीं॥कर्म फलन कर आशाजिनहीं॥
पाप पुण्य फल जग महँ जेता॥ज्ञानवान जन त्यागत तेता॥

जिनको कर्म फलों की आशा है उनको अवश्य ही कंजूस समझना चाहिये। ज्ञानी पुरुष तो जगत में जितना पाप और पुण्य रूप कर्म का फल है उसका त्यागन कर देते हैं।

कर्म कुशलता योग कहावा * फल कर त्याग तहाँ अहभावा ॥
अर्जुन योग प्राप्त करि लेहू * ईशहि अर्पि कर्म फल देहू ॥

कर्म को चतुराई से करने को योग कहते हैं वह कर्म की चतुराई क्या है कि कर्मों को करते हुए उन कर्मों के फलों का त्याग कर देना। हे अर्जुन ! तुम योग को प्राप्त करो और सब कर्मों के फल को परमात्मा के अर्पण कर दो।

फलहि त्यागि इमि समता धारी*होहिं विवेकी भव निधि पारी ॥
जन्म मृत्यु कर पाश नशावहि*सहजहि पुरुष परम्पद पावहि॥

इस प्रकार कर्म फलों को छोड़ कर और समता को धारण करके विवेकी पुरुष संसार सागर से पार हो जाते हैं। जन्म और मृत्यु की फाँसी कट जाती है और पुरुष सहज ही में परम्पद अर्थात् मुक्ति को पा लेता है।

मोह रूप भव कलिल अपारा*बुद्धि निकसि जब पहुँचहिपारा ॥
श्रवण योग्य बहु श्रुत करि त्यागा* तब उपजहि मन परम वैरागा ॥

संसार में मोह रूपी भारी कीचड़ है जब इसमें से बुद्धि निकल कर बाहर होती है (अर्थात् जब बुद्धि मोह रहित होती है) तब जो कुछ सुना हुआ है और जो कुछ सुनने योग्य है उस सब में तुझको अप्रीति हो जायगी।

नाना वेद वचन सुनि तोरी * भ्रमित भई निश्चय मति भोरी ॥
अस्थिर होय बुद्धि पुनि जबहीं * योगहु प्राप्त होय शृणु तबहीं॥

नाना प्रकार के (अर्थों वाले) वेदों के वचन सुन कर तेरी भोली बुद्धि को भ्रम हो गया है। जब फिर यह बुद्धि स्थिर होगी तब ही योग भी प्राप्त होगा।

योगवान थिर बुद्धि जन, केशव कहिये कौन ।
सो किमि बोलत रहत किमि, करत कृष्ण किमि गौन ॥

हे केशव ! योगवान् पुरुष जिनकी बुद्धि स्थिर होगई है किस प्रकार का होना है । वह किस प्रकार से बोलता है, किस प्रकार से रहता है । और हे कृष्ण ! किस प्रकार से चलता है ।

श्री भगवान्-उवाच

कह भगवान सुनहुँ सो भाई * जिमि मन शंक अशेष नशाई ॥
जब मन कर सब काम विहाई * गहइ पुरुष सब विधि समताई॥
निज स्वरूप संतुष्ट रहाई * स्थित प्रज्ञ तब तात कहाई ॥

तब भगवान् कहने लगे, हे भाई सो सब सुनों, जिसमें तुम्हारी शंका सम्पूर्ण निवृत्त हो जाय ।

जब यह पुरुष मन में आने वाली सब कामनाओं को दूर करके सब प्रकार से समता को ग्रहण कर लेता है । और फिर अपने ही स्वरूप में सन्तुष्टता को प्राप्त हो जाता है, तब इस पुरुष की बुद्धि स्थिर हुई है ऐसा कहा जाता है (उस पुरुष को स्थित प्रज्ञ कहते हैं)

दुख पाये नहिं मन घबराना * सुख कर चाहन कछु उर आना॥
क्रोध राग भय दोष दुरावहि * स्थित प्रज्ञ सो तात कहावहि ॥

जिस पुरुष का मन दुःख पाकर उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जिसको सुख प्राप्ति की कामना नहीं है । जिसने क्रोध प्रीति भय आदि दोषों को दूर कर दिया है, हे तात ! वह स्थित प्रज्ञ कहाता है ।

नेह रहित सर्वत्र समाना * पाइ शुभाशुभ नहिं विचलाना ॥
राग द्वेष नहिं मन महँ जाके * अस्थिर बुद्धि भई उर ताके ॥

जो पुरुष सब जगह प्रीति से रहित है, और जो शुभ और अशुभ को पाकर चलायमान नहीं होता । जिसके मन में राग

और द्वेष नहीं है उस पुरुष की बुद्धि स्थिर हुई है (ऐसा समझना चाहिये)।

इन्द्रिय विषयन कहँ इमि छोरहि * कच्छप जिमि निज अंग सकोरहि॥
मनहिं स्ववश करि राखत जोई * स्थिर मति निश्चय मानिय सोई॥

इन्द्रियों के विषयों को इस प्रकार से त्याग देना चाहियें कि जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, और बाहर के संसर्ग को त्याग देता है। और मन को जो वश करके रखता है वह स्थिर बुद्धिवान् कहा जाता है।

भोग किये बिन विषय नशाहीं * तदपि वासना नासत नाहीं॥
ब्रह्मानन्द उपज उर जासू * सोउ वासना नाशहि तासू॥

भोगों को त्याग देने से विषयों का नाश तो हो जाता है किन्तु विषय भोग की कामना नष्ट नहीं होती। किन्तु जिसके हृदय में ब्रह्म का सुख उत्पन्न होता है उसकी वह वासना भी नाश हो जाती है।

अर्जुन इन्द्रिय अति बली, बल करि मन हरि लेंय।
यत्न वान विद्वान जन, तिन हूँ कहँ दुख देंय॥

हे अर्जुन! इन्द्रियाँ बहुत बलवान् हैं और मन को जबरदस्ती अपनी तरफ़ खैंच लेतीं हैं। जो यत्न करने वाले विद्वान् लोग होते हैं उनको भी यह इन्द्रियाँ दुख देतीं हैं।

तिनहिं स्ववश करि सुमिरत मोही * योग युक्त दृढ़ मति जन सोही॥
कीजिय सुरति जु विषयन केरी * उपजहि तिन महँ प्रीति घनेरी॥

उन इन्द्रियों को वश में रख कर जो मेरा सुमिरन करता है, वह पुरुष योगी है और दृढ़ बुद्धि वाला है। विषयों की याद करने से उन विषयों में प्रेम उत्पन्न होता है।

प्रीति भये पुनि काम सतावहि * काम विरोध क्रोध उपजावहि॥
जानहुँ क्रोध मोह कर मूला * मोह भये नर अस्मृति भूला ॥

प्रेम उत्पन्न होने से उस विषय में इच्छा उत्पन्न होती है, इच्छा की रुकावट होने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से मोह उत्पन्न होता है, मोह होने पर मनुष्य की स्मृति नष्ट हो जाती है।

स्मृति केर भ्रम बुद्धि विनाशहि * बुद्धि नाश सर्वस्व नशावहि॥
राग द्वेष तजि मन वश राखहि * इन्द्रिन ते जु विषय रस चाखहि॥

स्मृति के नाश होने से (भ्रमित होने से) बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश होने से सब कुछ नाश हो जाता है। राग और द्वेष को छोड़ कर मन को वश में रक्खे, और यदि केवल इन्द्रियों से विषयों का भोग करे, तो:—

सो नर अमित हर्ष मन पावहि * मन प्रसाद सब दुःख नशावहि॥
चित प्रसाद कर अस फल भाई * सहजहि बुद्धि लहइ थिरताई॥

इस प्रकार केवल इन्द्रियों से भोग करने वाले पुरुप को मन में बहुत आनन्द प्राप्त होता है, फिर मन की प्रसन्नता सब दुःखों को दूर कर देती है। चित्त की प्रसन्नता का फल यह होता है कि मनुष्य की बुद्धि जल्दी से स्थिर हो जाती है।

योग हीन सत बुद्धि न पावा - आतम चिन्तन ताहि न भावा ॥
बिन विचार लह शान्ति न कोई * शान्ति बिना कहु किमि सुख होई॥

योग से रहित पुरुप उत्तम बुद्धि को प्राप्त नहीं होता, और आत्म चिन्तन (परमार्थ चिन्तन) उसको अच्छा नहीं लगता, बिना विचार के शान्ति को कोई नहीं प्राप्त होता, और शान्ति बिना सुख नहीं होता।

बुद्धि नसे यदि मन चलहि, इन्द्रिन के अनुसार।
जिमि नौकहि मझधार महँ, नाशहि वेग बयार॥

और द्वेष नहीं है उस पुरुष की बुद्धि स्थिर हुई है (ऐसा समझना चाहिये)।

इन्द्रिय विषयन कहँ इमि छोरहि * कच्छप जिमि निज अंग सकोरहि॥
मनहिं स्ववश करि राखत जोई * स्थिर मति निश्चय मानिय सोई॥

इन्द्रियों के विषयों को इस प्रकार से त्याग देना चाहिये कि जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, और बाहर के संसर्ग को त्याग देता है। और मन को जो वश करके रखता है वह स्थिर बुद्धिवान् कहा जाता है।

भोग किये बिन विषय नशाहीं * तदपि वासना नासत नाहीं॥
ब्रह्मानन्द उपज उर जासू * सोउ वासना नाशहि तासू॥

भोगों को त्याग देने से विषयों का नाश तो हो जाता है किन्तु विषय भोग की कामना नष्ट नहीं होती। किन्तु जिसके हृदय में ब्रह्म का सुख उत्पन्न होता है उसकी वह वासना भी नाश हो जाती है।

अर्जुन इन्द्रिय अति बली, बल करि मन हरि लेंय।
यत्न वान विद्वान जन, तिन हूँ कहँ दुख देंय॥

हे अर्जुन! इन्द्रियाँ बहुत बलवान् हैं और मन को ज़बरदस्ती अपनी तरफ़ खैंच लेतीं हैं। जो यत्न करने वाले विद्वान् लोग होते हैं उनको भी यह इन्द्रियाँ दुख देतीं हैं।

तिनहिं स्ववश करि सुमिरत मोही * योग युक्त दृढ़ मति जन सोही॥
कीजिय सुरति जु विषयन केरी * उपजहि तिन महँ प्रीति घनेरी॥

उन इन्द्रियों को वश में रख कर जो मेरा सुमिरन करता है, वह पुरुष योगी है और दृढ़ बुद्धि वाला है। विषयों की याद करने से उन विषयों में प्रेम उत्पन्न होता है।

प्रीति भये पुनि काम सतावहि * काम विरोध क्रोध उपजावहि॥
जानहुँ क्रोध मोह कर मूला * मोह भये नर अस्मृति भूला ॥

प्रेम उत्पन्न होने से उस विषय में इच्छा उत्पन्न होती है, इच्छा की रुकावट होने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से मोह उत्पन्न होता है, मोह होने पर मनुष्य की स्मृति नष्ट हो जाती है।

स्मृति केर भ्रम बुद्धि विनाशहि * बुद्धि नाश सर्वस्व नशावहि॥
राग द्वेष तजि मन वश राखहि *इन्द्रिन ते जु विषय रस चाखहि॥

स्मृति के नाश होने से (भ्रमित होने से) बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश होने से सब कुछ नाश हो जाता है। राग और द्वेष को छोड़ कर मन को वश में रक्खे, और यदि केवल इन्द्रियों से विषयों का भोग करे, तो:—

सो नर अमित हर्ष मन पावहि * मन प्रसाद सब दुःख नशावहि॥
चित प्रसाद कर अस फल भाई * सहजहि बुद्धि लहइ थिरताई॥

इस प्रकार केवल इन्द्रियों से भोग करने वाले पुरुष को मन में बहुत आनन्द प्राप्त होता है, फिर मन की प्रसन्नता सब दुःखों को दूर कर देती है। चित्त की प्रसन्नता का फल यह होता है कि मनुष्य की बुद्धि जल्दी से स्थिर हो जाती है।

योग हीन सत बुद्धि न पावा * आतम चिन्तन ताहि न भावा ॥
बिन विचार लह शान्ति न कोई * शान्ति बिना कहु किमि सुख होई ॥

योग से रहित पुरुष उत्तम बुद्धि को प्राप्त नहीं होता, और आत्म चिन्तन (परमार्थ चिन्तन) उसको अच्छा नहीं लगता, विना विचार के शान्ति को कोई नहीं प्राप्त होता, और शान्ति बिना सुख नहीं होता।

बुद्धि नसे यदि मन चलहि, इन्द्रिन के अनुसार।
जिमि नौकहि मझधार महँ, नाशहि वेग बयार ॥

अगर इन्द्रियों के अनुसार मन चलता है, तो बुद्धि नष्ट हो जाती है। जिस तरह कि हवा का जोर नाव को मझधार ही में डुबो देता है।

जिन निज इन्द्रिय वश करि लीन्हा * विष वत त्यागि विषय कहँ दीन्हा॥
महाबाहु अस्थिर मति धीरा * तेइ विवेकी पुरुष गँभीरा॥

जिन पुरुषों ने अपनी इन्द्रियों का वश में कर रक्खा है और विषयों को विष समान जानकर त्याग दिया है, हे महाबाहो! वेही विवेकी पुरुष हैं, और वे ही गंभीर स्थिर बुद्धि वाले हैं।

सब भूतन कहँ अहइ जु राता * योगी जन कहँ सो दिन ताता॥
सबहि दिवस सो मुनि कहँ राती * ज्ञानाज्ञान भेद यहि भाँती॥

सब भूत प्राणियों के लिये जो रात है योगी अर्थात् संयमी पुरुषों के लिये वही दिन है। सब लोगों के लिये जो दिन है वह संयमी पुरुष के लिये रात है। ज्ञान और अज्ञान का भेद इस प्रकार से है। भाव यह है कि ज्ञान रूपी दिवस अज्ञानियों को रात्रि के समान है क्योंकि उनको तो अज्ञान ही दिन के समान प्रतीत होता है, सो अज्ञान ज्ञानियों को रात्रि के समान है जैसे उल्लू को दिन में नहीं दीखता तो दिन उसके लिये रात के समान हुआ, और रात में उल्लू को खूब दीखता है तो उसके लिये रात ही दिन के समान है।

अचल पयोनिधि पूर्ण सदाई * सरिता आप गिरहिं तहँ आई॥
लहइ कामना इहि विधि जोई * शान्त सोय नतु कामी कोई॥

अचल समुद्र जिस प्रकार पूर्ण रहता है और नदियाँ अपने आप आ आकर उसमें गिरती हैं। इसी प्रकार जिस पुरुष की इच्छायें अपने आप पूरी होती हैं, वही पुरुष शान्त है, कामनाओं के करने वाला पुरुष शान्त नहीं हो सकता। भाव यह है कि

अपने आप जो कुछ प्राप्त होता है उसी में जो तृप्त है स्वयं नाना प्रकार की इच्छायें नहीं करता वह पुरुप सुखी है।

मद ममता अरु काम दुराई * निस्पृह सब सन रहत सदाई ॥
ब्राह्मी अस्थिति यह समुझाई * प्राप्त भये नहिं मोह सताई ॥
अन्त तजहि तनु निश्चय एही * पुनर्जन्म नहिं सम्भव तेही ॥

अभिमान, ममता, और कामनाओं को दूर करके वह योगी पुरुप सबसे सर्वदा वे मतलब रहता है। यह ब्राह्मी स्थिति समझाई इस स्थिति को पा लेने से फिर मोह उत्पन्न नहीं होता। मरण-काल में यदि इस स्थिति में देह छूटे तो अवश्य जीव मुक्तिपद को प्राप्त हो जाता है।

ज्ञान योग कर भेद यह, सर्वोत्तम उर आन ॥
अर्जुन त्यागहु मोह सब, हाथ गहहु धनु बान ॥

हे अर्जुन! ज्ञान योग का यह सबसे उत्तम भेद हृदय में रख-कर मोह को त्याग दो, और लड़ने के लिये हाथ में धनुष बाण लेकर तयार हो जाओ।

इति द्वितीय अध्याय।

तृतीय अध्याय
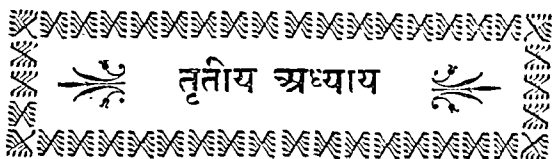
अर्जुन उवाच

ज्ञान योग यदि कर्म ते, है उत्कृष्ट महान।
तो किमि केशव कर्म महँ, प्रेरत हो मुहि जान॥

मिश्रित वाक्यन औरहू, मति मोहइ मम तात।
या ते निश्चित एक कहु, मेरे हित की बात॥

अर्जुन बोला कि हे कृष्ण! ज्ञान योग यदि कर्म की अपेक्षा उत्तम है तो आप मुझे जानबूझ कर क्यों कर्म में लगाते हैं? इन मिले हुये से आपके वचनों से हे कृष्ण! मेरी बुद्धि और भी मोह को प्राप्त होती है इसलिये निश्चय करके एक बात कहिये जो मेरे हित की हो।

श्री भगवान् बोले

दुइ निष्ठा इह लोक महँ, प्रथमहुँ कहीं बुझाय।
कर्म योग योगिन तईं, ज्ञान विवेकिन भाय॥

इस संसार में दो निष्ठा हैं, सो प्रथम भी कह आये हैं, योगियों के लिये तो कर्म योग है, और विवेकी पुरुषों के लिये ज्ञान योग है।

कर्म छुटहिं नहिं कर्महिं त्यागे * गहन भेद समुझावहुँ आगे।
केवल कर्म त्याग मन माना * सिद्धि हेतु नहिं होय सुजाना।

कर्म को त्याग देने से कर्म नहीं छूटते, इसमें जो गहरा भेद है सो आगे समझावेंगे। कर्म का केवल मन माना त्याग हे चतुर अर्जुन ! सिद्धि का हेतु नहीं होता।

कर्म किये विन कवनहु प्राणी * क्षण रहि सकत न निश्चय मानी॥
प्रकृति केर गुण वहु वलवाना * परवश कर्म करावहिं नाना॥

कर्म किये विना कोई भी प्राणी एक क्षण भी नहीं जी सकता यह निश्चय मानो। प्रकृति के गुण वहुत वलवान् हैं वे मनुष्य से जबरदस्ती काम करवा लेते हैं।

इन्द्रिय रोकि विषय ते लीन्हा * किन्तु मनहिं मन चिन्तन कीन्हा॥
इमि विषयन मन मूढ भ्रमावा * सो केवल जग दम्भ कहावा॥

जिस मनुष्य ने इन्द्रियों को विषयों से रोक लिया हो, किन्तु विषयों का चिन्तन मन ही मन में करता रहता हो। इस प्रकार मूर्ख पुरुष मन ही में विषयों का चिन्तन करते हैं, यह जगत में दम्भ कहलाता है। (दम्भ नाम ढोंग का है)

मन करि इन्द्रियवश महँ लाई * कर्मइन्द्रिन सन कर्म कराई॥
इमि असक्त रहि वरतै जोई * सो अति श्रेष्ठ विवेकी सोई॥

मन के द्वारा इन्द्रियों को वश में लाकर कर्म इन्द्रियों से कर्म करावे। इस प्रकार प्रीति रहित होकर जो वर्ताव करता है, वह अत्यन्त श्रेष्ठ विवेकी पुरुष है।

नियत कर्म करि पालहु धर्मा * लखि अकर्म सन भल निज कर्म्मा॥
कर्म किये विन अरजुन वीरा * कहहु कवन विधि चलहि शरीरा॥

जो मुकर्रिर काम हैं उसे करते हुए अपने धर्म का पालन करना चाहिये, क्योंकि अकर्म से अर्थात् कर्म न करने से कर्म का करना ही श्रेष्ठ है, ऐसा समझना चाहिये। हे वीर अर्जुन ! कर्म

किये विना कहो शरीर का निर्वाह भी कैसे हो सकता है अर्थात् जीवन यात्रा भी कर्म विना नहीं हो सकती।

यज्ञ कर्म तजि आन सब, कर्म बन्ध कर हेत।
मुक्त संग हुइ कर्म करु, कुन्ती पुत्र सचेत॥

यज्ञ कर्म को छोड़ कर और सब कर्म बन्धन का कारण हैं इसलिये हे कुन्ति पुत्र अर्जुन! तू कर्मों में प्रीती को छोड़ कर कर्मों को कर।

यज्ञहि सन प्रभु प्रजा रचाई * महिमा प्रथमहिं दीन्ह बताई॥
फूलहु फलहु यज्ञ के भाये * सुखी होहु मन इच्छित पाये॥

प्रजापति परमात्मा ने यज्ञ से ही सारी सृष्टि को उत्पन्न किया है। और यज्ञ की महिमा भगवान् ने प्रथम ही बतला दी है कि यज्ञ के द्वारा तुम लोग सब प्रकार फूलो फलोगे और इच्छित पदार्थों को पाकर सुखी होगे।

पूजहु देवन जो मख द्वारा * तुम पहँ राखहिं प्रीति अपारा॥
इमि रहि तुष्ट परस्पर दोऊ * सब प्रकार भल तुम कहँ होऊ॥

प्रजापति भगवान् की आज्ञा है कि जो तुम यज्ञों के द्वारा देवताओं का पूजन करोगे तो वे भी तुम्हारे ऊपर अधिक प्रेम रक्खेंगे। इस प्रकार देवता और तुम सब एक दूसरे को सन्तुष्ट रखने से तुम्हारे लिये सब तरह से भलाई है।

जब सन्तुष्ट होहि अनुरारी * पूजहिं सब मन काम तुम्हारी॥
सुरन्ह भोग विनु दिये जु कोई * भोगत स्वयम चोर अह सोई॥

जब देवता सन्तुष्ट होंगे तो वे तुम्हारी सब मन की इच्छाओं को पूरा करेंगे। देवताओं के भोग लगाये विना (अर्पण किये विना) जो कोई पुरुष स्वयम् किसी पदार्थ का भोग करता है वह चोर है।

यज्ञ शिष्ट पुनि सन्तन खावा * सो तिनके सब पाप नशावा ॥
केवल निज हित तपत रसोई * ता कहँ निश्चय पातक होई ॥

यज्ञ से बचा हुआ भोजन सन्त लोग भी करते हैं, वह भोजन उनके सब पापों का नाश करता है। जो पुरुष केवल अपने लिये ही रसोई बनाता है वह पाप का भागी होता है।

अन्नहि जीवन जीवन दाता * सो उपजहि बरषा सन ताता ॥
वर्षा होहि यज्ञ के द्वारा * यज्ञ होहि पुनि कर्म उदारा ॥

अन्न से प्राणियों का जीवन होता है, अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है, वर्षा यज्ञ से होती है, यज्ञ उत्तम कर्म से होता है।

कर्म भयउ पुनि वेद ते, वेद अछर भगवान।
सब महँ व्यापक ब्रह्म सो, नित्य यज्ञ ठहरान ॥

कर्म वेद से उत्पन्न हुआ है, वेद अक्षर भगवान् से उत्पन्न होते हैं, इसलिये वह अक्षर और सब में व्यापक ब्रह्म यज्ञ में सदा मौजूद है ऐसा समझना चाहिये।

इमि यह चक्र चलिउ जग माहीं * तदनुसार जे वरतत नाहीं ॥
इन्द्रिय लम्पट पाप कमाई * व्यर्थहि जनमत जग महँ आई ॥

इस प्रकार से यह चक्र संसार में चल रहा है, इस चक्र के अनुसार जो पुरुष वर्त्ताव नहीं करते। वे इन्द्रियों के विषयों में लोभित हुए पाप को कमाते हैं, और व्यर्थ ही संसार में जन्म लेते हैं।

पै जे तत्पर आतम स्वरूपा * तृप्त रहहिं सुख पाय अनूपा ॥
नहि कर्त्तव्य शेष कछु तिनहीं * ब्रह्मानन्द मिलिउ इमि जिनहीं ॥

पर जो पुरुष आत्म स्वरूप में लगे हुए हैं, और उस आत्मा के अनुपम सुख को पाकर तृप्त रहते हैं, और जिनको ब्रह्मानन्द प्राप्त हुआ है, ऐसे पुरुषों के लिये कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता।

तिनहिं न कर्म अकर्म विधाना * हानि लाभ कछु मनहिं न आना॥
काहू सन कछु आस न करहीं * मुक्ति पाय भव निधि कहँ तरहीं॥

उन पुरुषों के लिये कर्म और अकर्म में अर्थात् करने और न करने में कोई विधि और निषेध नहीं है। वे हानि और लाभ को मन में नहीं लाते, वे पुरुष किसी से कोई कामना नहीं रखते, वे तो जीवन मुक्त होकर संसार रूपी सागर को तर जाते हैं।

निज करतव्य अवशिचह कीन्हाँ*संग दोष पै मनहिं न चीन्हाँ॥
जो तजि संग कर्म मन लावहि * सो जन शीघ्र परम पद पावहि।

अपना कर्त्तव्य अवश्य पालन करना चाहिये, किन्तु कर्म में संग अर्थात् प्रीती को न रखना चाहिये। इस प्रकार जो पुरुष संग का त्याग करके मन लगा कर कर्म करता है, वह पुरुष जल्दी ही परम गति को पा लेता है।

कर्महिं करि जनकादिक राजा * भये प्रसिद्ध सब सिद्ध समाजा॥
लोकहु कर हित पुनि चित धारी * कीजिय कर्महिं तात विचारी।

कर्मों को करते हुए ही जनक आदिक राजा लोग सिद्धों की समाज में प्रसिद्ध हो गये थे। और संसार की भलाई देखते हुए भी हे प्रिय अर्जुन! कर्म को विचार कर करना चाहिये।

महा पुरुष की रीति कहँ, इतर करहिं अनुहार।
सो प्रमाण जो कछु करहि, लोकहु तिहि अनुसार॥

बड़े आदमी के तरीकों को दूसरे लोग भी अनुकरण करते हैं, बड़ा आदमी जैसे किसी बात को प्रमाणित कर देते हैं संसार भी उसीका अनुसरण करता है (अर्थात् बड़े लोगों का अनुकरण छोटे लोग किया करते हैं।)

मोहि न त्रिभुवन करतब कोई * नहिं कछु वस्तु जु प्राप्त न होई।
तदपि कर्म नहिं तजहुँ किरीटी* केवल जग हित रखि निज दीठी।

मुझे तीनों लोक में कोई काम करने को शेष नहीं है, और न कोई चीज़ ऐसी है जा प्राप्त न हो। तो भी हे अर्जुन! मैं कर्म को नहीं त्यागता केवल संसार की भलाई को नज़र में रख कर।

मैं यदि कर्म न करहुँ सचेते * मम अनुकरण करहिं जन जेते॥
देहुँ त्यागि यदि मैं पुरुषारथ * तो सब लोक नशावहिं पारथ॥

मैं यदि सचेत होकर कर्म न करूँ तो जितने लोग हैं वे मेरा अनुकरण करेंगे। हे पार्थ! यदि मैं पुरुषार्थ करना छोड़ दूँ तो सब लोकों का नाश हो जाय।

उपजहिं संकर पुनि मम हेतू * प्रजहि नशावहुँ कुरु कुल केतू॥
करहिं मूढ़ जिमि कर्म अनेका * प्रीति सहित गहि फलकर टेका॥
तिमि विद्वान दूर करि कामा * जग हित कर्म करहि सुख धामा॥

ऐसा करने से मैं संकर वर्ण की उत्पत्ति कराने वाला होऊँगा, और हे अर्जुन! मैं सारी प्रजाओं को नाश करने वाला होऊँगा। मूर्ख पुरुष जिस प्रकार नाना कर्मों को आसक्ति सहित मन में फल की कामना रख कर करते हैं उसी प्रकार सुखी विद्वान् पुरुष को फल की कामना छोड़ कर जगत के हित के लिये कर्म करते रहना चाहिये।

कर्म निष्ठ जे जन अज्ञानी * तिनहिं न भ्रमित करहि मुनि ज्ञानी॥
रहि नेर्लेप करहि सब करमा * तिनहिं लगावहि निज निज धरमा॥

जो अज्ञानी पुरुष कर्मनिष्ठ होते हैं ऐसे पुरुषों को विचारवान् ज्ञानी पुरुष भ्रमित न करे; अर्थात् उनको शंका में न डाल दे। निर्लेप रह कर सब कर्मों को करे, और अज्ञानी पुरुषों को (स्वयं कर्म करते हुए) अपने अपने कर्म में लगावे।

कर्म होहिं सब प्रकृति गुण, अटल नियम यह गूढ़।
अहंकार वश आप कहँ, करता मानहिं मूढ़॥

जितने कर्म होते हैं, वह सब प्रकृति के गुणों के द्वारा होते हैं, यह गूढ़ और अटल नियम है, मूर्ख पुरुष अहङ्कार के कारण अपने आपको कर्त्ता मानते हैं।

ज्ञानवान जन जे बिनु रागा * भल जानहिं गुण कर्म विभागा॥
गुण कर प्रवृत्ति गुणनके माहीं* अस जिय जानि लिप्त सो नाहीं॥

जो ज्ञानवान् पुरुप राग रहित हैं, वे गुण और कर्म के विभाग को भली प्रकार समझते हैं। गुणों की प्रवृत्ति गुणों में होती है, ऐसा मन में जान कर ज्ञानी पुरुप लिप्त नहीं होते।

प्रकृति केर गुण मोहित जोई* गुण कर्मन महँ लिप्त सु होई॥
तिन मति मन्दन कहँ सो ज्ञानी* भ्रमित करहि नहिं ज्ञान वखानी॥

जो पुरुप प्रकृति के गुणों में मोहित हो जाता है वह गुण और कर्मों में लिप्त होता है। ऐसे बुद्धिहीन लोगों को ज्ञानी पुरुप ज्ञान की चरचा करके भ्रम में न डाले। (भाव यह है कि उन मूर्ख पुरुपों की बुद्धि ज्ञान के गहन भाव को समझ न सकेगी और कुछ उलटा ही समझ कर कर्म को भी वे लोग त्याग बैठेंगे।)

मम अर्पण करि कर्म अशेपा * आत्महिं ध्येय वनाय विशेपा॥
आश दुराय ममत्व विसारी* करहु युद्ध सन्ताप निवारी॥

सम्पूर्ण कर्मों को मेरे अर्पण करके और आत्मा को ही अपना विशेप ध्येय बनाकर (जिसका ध्यान किया जाय उसे ध्येय कहते हैं) और सब आशा और ममता को छोड़ कर हे अर्जुन! तुम शोक को त्याग कर युद्ध करो।

यह मत मोर जु तजि कुटिलाई * अनुष्ठान नर करहिं सदाई॥
श्रद्धा अतुलित मन महँ धारी * ते नर होहिं कर्म के पारी॥

मेरे इस मत को जो लोग कुटिलता छोड़कर आचरण में सदा लाते हैं, और मन में अत्यन्त श्रद्धा को धारण करते हैं वे पुरुप कर्म के बंधन से छूट जाते हैं।

पै मूरख जे निन्दा करहीं * मूढ़ मोर मत नहिं अनुसरहीं ॥
नष्ट होहिं ते बारम्बारा * ज्ञान विमूढ़ भ्रमहिं संसारा ॥

परन्तु जो मेरे इस मत की बुराई करते हैं, और मेरे मत के अनुसार नहीं वर्त्तते वे लोग ज्ञान से रहित होकर वारवार संसार में चक्कर खा खाकर नाश को प्राप्त होते हैं।

ज्ञानवान हूँ वर्तहीं, निज स्वभाव अनुकूल।
तिमि भूतहु निज प्रकृति गत, अरु निग्रह निरमूल ॥

ज्ञानी पुरुष भी तो अपने स्वभाव के अनुसार वर्त्ताव करते हैं, इसी प्रकार सब भूत प्राणी भी अपने गुण स्वभाव के अनुसार वर्त्ताव करते हैं. इसमें रोकना व्यर्थ ही है अर्थात् रोकने से क्या होगा—कुछ भी नहीं।

इन्द्रिन महँ अरु विषयन माहीं * राग द्वेष बहुधा ठहराहीं ॥
इन वश भूलि परहि जनि कोऊ * जीवन कहँ बाधक यह दोऊ ॥

राग और द्वेष इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयों में अधिकतर ठहरते हैं, इनके वश में किसी को न पड़ना चाहिये, क्योंकि जीवों के लिये यह (उन्नति में) बड़ी रुकावट पैदा करते हैं।

गुणहु रहित निज धर्महि नीका * उत्तम धर्महु पर कर फीका ॥
मृत्यु भली निज धर्म विचारी * पर कर धर्म भयानक भारी ॥

गुणों से रहित भी अपना धर्म ही उत्तम है, किन्तु दूसरे का उत्तम धर्म भी अपने लिये अच्छा नहीं है। अपने धर्म को विचार कर मरना भी अच्छा है, किन्तु दूसरे का धर्म बड़े भय को देने वाला है।

अर्जुन कहा कहहु प्रभु मोही * एक बात हरि बूझौं तोही ॥
कवन पुरुष सन करि बरयाई * इच्छा रहित हु पाप कराई ॥

अर्जुन ने कहा कि हे प्रभु ! एक बात मैं आप से पूछता हूँ, वह बताइये । इस मनुष्य को पाप करने की इच्छा न होते हुए भी ज़बरदस्ती पाप करने में प्रवृत्त कौन कर देता है ?

सुनहु धनञ्जय कह भगवाना * ते दुहुँ काम क्रोध बलवाना ॥
अहँ रज संभव पुनि बड़ पापी * लम्बोदर रिपु अति संतापी ॥

भगवान् बोले कि हे अर्जुन ! वे दोनों बलवान् काम और क्रोध हैं । यह काम और क्रोध रजोगुण से उत्पन्न होते हैं और यह बड़े पापी हैं, इनका बड़ा भारी पेट है, यह बैरी है, और बड़ा दुख देने वाले हैं ।

दोउन ज्ञान ढाँपि इमि लीन्हा * जिमि अगिनी कहँ धूम मलीना ॥
पुनि जिमि गर्भहि जरा छिपाये * अरु दर्पण कहँ जिमि मल छाये ॥

काम और क्रोध इन दोनों ने इस तरह ज्ञान को ढक लिया है, जिस तरह धूआँ आग को ढक लेता है, और गर्भ को झिल्ली ढक लेती है, और जैसे शीशे को मैल ढक लेता है ।

ज्ञानिहिं बैरी कामना, ज्ञान ढांपि सो लेय ।
तृप्त होय नहिं अग्नि जिमि, कितनों हू किन देय ॥

ज्ञानी पुरुष के लिये इच्छा बैरी के समान है, क्योंकि वह ज्ञान को ढक लेती हैं और इच्छा की तृप्ती नहीं होती, जैसे अग्नि में कितना ही डालो सब भस्म हो जाता है, इसी प्रकार इच्छा कभी पूर्ण नहीं होती, कितना भी मिल जाय ।

मन बुद्धी अरु इन्द्रिन माहीं * सो कामना बसइ करि ठाहीं ॥
इन महँ रहि पुनि ज्ञान नशावहि *जीवन कहँ बहु भाँति भ्रमावहि ॥

वह कामना मन बुद्धि और इन्द्रियों में रहती है, और इनमें रह कर ज्ञान को नाश करती है, और जीवों को बहुत भांति से भ्रम में डाल देती है ।

सुनहु तात तुम अस जिय जानी * प्रथमहिं इन्द्रिय वश महँ आनी॥
इच्छा पापिनि नाशि समूला * होहु सुखी तरि भव निधि शूला॥

इसलिये हे तात ! तुम ऐसा जान कर पहिले इन्द्रियों को वश में लाकर इच्छा पापिनी का समूल नाश करके संसार सागर के दुखों से पार होकर सुख को प्राप्त हो ।

तन ते इन्द्रिय परम बखाना * इन्द्रिन ते पर मन कहँ माना ॥
मन हू ते पर बुद्धि सुहाई * बुद्धि परे पुनि तत्व कहाई ॥

शरीर से परे इन्द्रियाँ हैं अर्थात् शरीर से इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं, इन्द्रियों से मन सूक्ष्म है, मन से बुद्धि सूक्ष्म है, और बुद्धि से परे तत्व रूप आत्मा सूक्ष्म है ।

इमि चैतन्य परात्पर जानी * मन इन्द्रिन कहँ वश महँ आनी ॥
महा बाहु तुम चतुर सुजाना * हतहु काम रिपु अति बलवाना ॥

इस तरह से चैतन्य आत्मा को सबसे परे जान कर और मन इन्द्रियों को वश में लाकर हे महाबाहो ! काम रूपी शत्रु को जो अत्यन्त बलवान् है, मार डालो, क्योंकि तुम चतुर और समझदार हो ।

कर्म योग कर भेद यह, जे समुझहिं मति धीर ।
अवशि परम्पद पावहीं, सुख सन त्यागि शरीर ॥

कर्म योग के इस भेद को जो बुद्धिमान् पुरुष समझते हैं, वे सुख पूर्वक शरीर त्यागने पर परम्पद को प्राप्त होते हैं ।

इति तृतीय अध्याय ।

चतुर्थ अध्याय
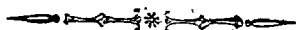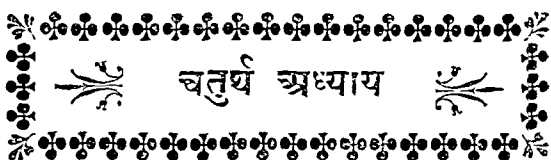
श्री भगवान् उवाच

प्रथम दीन्ह मैं सूर्य कहँ, यह अविनाशी योग।
तिन मनु मनु इक्ष्वाकु कहँ, पुनि जाना सब लोग ॥

श्रीभगवान् कहने लगे कि इस अविनाशी योग के ज्ञान को प्रथम मैंने वैवस्वत (सूर्य) को दिया. वैवस्वत ने मनु को दिया और मनु ने इक्ष्वाकु राजा को उपदेश किया और राजा इक्ष्वाकु से और सब लोगों ने जाना।

इमि यह परम्परा चलि आयउ॥अनुपम योग राज ऋषि पायउ।
योग महान सु काल प्रभावा॥सुनहु धनञ्जय निपट नशावा॥

इस तरह यह अनुपम योग परम्परा करके राज ऋषियों को प्राप्त होता रहता था। हे अर्जुन ! सुनो वह महान योग समय के प्रभाव से बिलकुल लोप सा हो गया है।

आज योग सो परम पुराना॥तात तोहि मैं कीन्ह बखाना॥
तू मम भक्त सखा प्रिय मोही॥उत्तम भेद सिखावहुँ तोही॥

हे तात ! आज वही अत्यन्त प्राचीन योग मैंने तुझे कहा है, क्योंकि तू मेरा भक्त है, मित्र है, और मुझको प्यारा है. और यह भेद उत्तम है, मैं तुझे समझाता हूँ।

अरजुन बूझत दुहुँ कर जोरी॥दूरि करहु प्रभु शंका मोरी॥
भयउ विवस्वत सतयुग आदि॥तुम हरि जन्म लीन्ह अब आदि॥

तब अर्जुन दोनों हाथ जोड़ कर पूछने लगा कि हे प्रभो ! आप एक मेरी शंका को दूर कीजिये। शंका यह है कि विवस्वत तो सत-युग में हुए, और हे कृष्ण ! तुम्हारा जन्म अब हुआ है अर्थात् द्वापर के अन्त में हुआ है।

किमि मानउँ मैं तुम उपदेशा॥सतयुग महँ यह ज्ञान विशेषा ॥
तब भगवान सहज सुख पागे॥अरजुन कहँ समुझावन लागे ॥

तब हे कृष्ण ! यह बात मैं कैसे मानूँ कि आपने सतयुग में यह विशेष ज्ञान विवस्वन को उपदेश किया। यह सुनकर श्रीकृष्ण जो सहज ही सुख रूप हैं अर्जुन को समझाने लगे।

मैं जग जन्म लीन्ह बहुतेरे * तिमि तुम्हरे हू जन्म घनेरे ॥
ते सब याद न विसरहिं मोही ॥ महाबाहु पै याद न तोही ॥

कृष्ण कहने लगे कि हे अर्जुन ! मैंने संसार में बहुत दफ़े जन्म लिया है, इसी तरह तैंने भी बहुत दफ़े जन्म लिया है। उन सब जन्मों की याद मुझे बनी है, मैं भूला नहीं हूँ किन्तु हे महाबाहु अर्जुन ! तुझको अपने जन्मों की याद नहीं है।

मैं अज अव्यय आतमा, ईश्वर भूतन केर।
निज माया के बल स्वयं, जन्म धरहुँ बहु बेर ॥

मैं अजन्मा हूँ, अक्षय हूँ, आत्मा हूँ, और भूत प्राणियों का ईश्वर हूँ, अपनी माया के बल से अपने आप बहुत बेर जन्म को धारण करता हूँ।

जब जब होय धर्म की हानी * दुखी होहिं मुनि पण्डित ज्ञानी ॥
तब तब धर्म उबारन हेतू ॥ धरहूँ जन्म निज कला समेतू ॥

जब जब धर्म का ह्रास हो जाता है, और मननशील विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को दुःख मिलने लगता है, तब तब धर्म की उन्नति करने के लिये मैं अपनी कलाओं के समेत जन्म को धारण करता हूँ।

सुखी करन सब संत समाजू॥पापी जनहि शिखावन काजू ॥
धर्म प्रचार करन सुख दाई * जुग जुग जन्म धरों जग आई ॥

सब सन्त लोगों को सुख देने के लिये, और पापी पुरुषों को शिक्षा करने के लिये, सुख को देने वाले धर्म का प्रचार करने के लिये, मैं संसार में आकर युग युगों में जन्म को धारण करता हूँ।

जन्म कर्म मम दिव्य स्वरूपा ॥ जे जानहिं ते मुनि वर भूपा ॥
ते तनु त्यागि मिलहिं मुहि आई॥तिनहिं न भव दुख बहुरि सताई॥

मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं (अर्थात् अलौकिक हैं) जो लोग इस बात को जानते हैं, वे विचारवान् पुरुषों में राजा के समान हैं, वे पुरुष शरीर त्यागन करने के बाद मुझको प्राप्त होते हैं, और उनको संसार का दुःख फिर नहीं व्यापता।

बीत राग भय क्रोध न लेशा॥मम आश्रय गहि रहत विशेषा॥
होय पवित्र ज्ञान तप द्वारा॥बहुत मिले मम भाव अपारा ॥

जो लोग राग रहित है, भय और क्रोध का जिनके अन्दर लेश नहीं है, और विशेष कर मेरा आश्रय ग्रहण करके रहते हैं, ऐसे बहुत से लोग तप और ज्ञान द्वारा पवित्र होकर मेरे अपार परमतत्व भाव को प्राप्त हो चुके हैं।

जो जिहि भाव भजहि मुहि भाई * ता कहँ तस फल देहुँ सदाई ॥
मम मारग सब नर अनुसरहीं * मोहि भजइँ ते भव दुख तरहीं॥

हे भाई मुझे जो कोई जिस भाव से भजता है, उसको सदा मैं वैसा ही फल देता हूँ। सब लोग मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं, जो मुझको भजते हैं वे संसार दुःख से तर जाते हैं।

चहत कर्म की सिद्धि जे, ते बहु पूजहिं देव।
शीघ्र सिद्धि नर लोक महँ, किये सुरन की सेव ॥

जो पुरुष कर्म की सिद्धि चाहते हैं वे बहुत कर देवताओं की

पूजा करते हैं, क्योंकि मृत्यु लोक में देवताओं की सेवा करने से कर्म की सिद्धि जल्दी होती है।

चारि वर्ण मैं सिरजन कीन्हा * सो गुण कर्ण स्वभाव अधीना ॥
तिन कर करता स्वयं प्रकाशी * यदपि अकरता मैं अविनाशी ॥

चारों वर्णों को मैंने उत्पन्न किया है वे चारों वर्ण गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर बनाये गये हैं उनका बनाने वाला चैतन्य स्वरूप मैं ही हूँ यद्यपि मैं अकर्त्ता और अविनाशी हूँ।

कर्म न मोकहँ लिप्त कराहीं * फल कर चाह न कछु मन माहीं ॥
यहि विधि जो जन जानत मोही * बन्धन कर्म करत नहिं ओही ॥

कर्म मुझको लिप्त नहीं करते क्योंकि मेरे मन में उन कर्मों के फल की कोई इच्छा नहीं है। इस प्रकार से (अर्थात् मैं कर्मों को करते हुए भी अकर्त्ता हूँ) जो पुरुष मुझको जानता है उसको कर्म बंधन नहीं करते।

यह मत मोर भले मन चीन्हा * प्रथमहु कर्म मुमुक्षुन कीन्हा ॥
करहु कर्म तुम हूँ अस जानी * यह पुरखन की रीति पुरानी ॥

इस मेरे उत्तम मत को भले प्रकार जान कर पहिले भी मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छा करने वाले) लोगों ने कर्म किये हैं ऐसा समझ कर तुमको भी कर्म करना चाहिये, क्योंकि यह पुरखों की पुरानी रीति है।

कर्म कहा पुनि कहा अकरमूँ * कवि जनहूँ नहिं जानत मरमूँ ॥
कर्म भेद समझावहुँ तोही * जा कहँ जानि न पुनि भव होई ॥

कर्म क्या है, और अकर्म क्या है, इस बात के भेद को बुद्धिमान् पण्डित लोग भी नहीं समझ पाते हैं। सो कर्म का भेद मैं तुझे समझता हूँ, जिसको जान कर फिर तुझको संसार न प्राप्त होगा।

कर्म अकर्म विकर्म त्रिभेदा ❀ गहन कर्म गति कही सु वेदा ॥
गूढ़ विषय सुविचारन योगू ❀ विन समुझे न कटहिं भव रोगू ॥

कर्म अकर्म और विकर्म करके कर्म के तीन भेद हैं कर्म की गति बड़ी गहरी है, सो वेद में कही गई है। यह कर्म का विषय गूढ़ है, और अच्छी तरह विचार करने के लायक़ है, इस कर्म की गति को न समझने से संसार रोग निवृत्त नहीं हो सकता।

लखहि अकर्महिं कर्म महँ, कर्म अकर्मन माहिं।
सर्व कर्म कृत युक्त सो, या महँ संशय नाहिं॥

कर्म में जो अकर्म को देखता है, और अकर्म में कर्म को देखता है वह सर्व कर्मों का करने वाला और योग युक्त है इसमें कोई संशय नहीं है।

भाव यह है कि कर्म करते हुए भी आत्मा कुछ नहीं करता, इसलिये वह कर्म भी आत्मा के लिये तो अकर्म रूप ही है यह तो कर्म में अकर्म को देखना है। और आत्मा कुछ नहीं करता तो भी आत्मा के आश्रित शरीर से सब काम होते ही हैं, यह अकर्म में कर्म का देखना है। अथवा जो "मैं कर्म न करूँगा" इस अभिमान से कर्म नहीं करता वह भी कर्म न करने के अभिमान रूप कर्म को करता है, यह अकर्म में कर्म को देखना है।

सब आरम्भ करहि बिनु कामा ❀ रहि निर्लेप सदा सुख धामा ॥
ज्ञान अनिल महँ कर्म जरावहि ❀ सो बुध चतुरन माहिं कहावहि ॥

सब आरम्भों को कामना छोड़ कर करे, कर्मों में निर्लेप रहना सबही सुख की राशि है। ज्ञान रूप अग्नि में कर्मों को भस्म करदे ऐसा जो पुरुष है वह बुद्धिमानों में चतुर कहलाता है।

कर्म फलन कर आश दुराई ❀ तजि आश्रय रह तृप्त सदाई ॥
कर्मन महँ सु प्रवृत्तहु होई ❀ ता कहँ कर्म लगत नहिं कोई ॥

कर्म फलों की आशा को छोड़ कर और सब प्रकार के आश्रय को त्याग कर जो सदा तृप्त रहता है, वह यदि कर्मों में प्रवृत्त भी हो तो उसको कोई कर्म वन्धन का हेतु नहीं होता।

आशा रहित सु मन वश कीन्हा॥ सर्व परिग्रह पुनि तजि दीन्हा॥
करहि कर्म केवल तन हेतू॥ ता कहँ पाप न कुरु कुल केतू॥

आशाओं से रहित होकर उसने मन को वश में किया हुआ है और सब प्रकार का एकत्रित करना जिसने त्याग दिया है। वह कर्म केवल शरीर निर्वाह के निमित्त करता है उसको हे अर्जुन! कोई पाप नहीं लगता।

सहज प्राप्त महँ तुष्ट प्रवीना॥ द्वन्द्व रहित तिमि मत्सर हीना॥
सिद्धि असिद्धि भई सम जेही॥ कर्महु करहिं न वन्धन तेही॥

वह जो कुछ सहज ही प्राप्त हो जाता है, उसमें सन्तुष्ट रहता है सब प्रकार के द्वन्द्वों से अलग है और अभिमान रहित है किसी कार्य की सिद्धि और असिद्धि उसके लिये समान ही है, ऐसे पुरुष को कर्म वन्धन नहीं कर सकता।

जीवन मुक्त संग कहँ त्यागी॥ ज्ञानावस्थित परम विरागी॥
यज्ञ हेतु जो करमहु करई॥ ते सब कर्म लीन हुई रहई॥

परम वैराग्यवान् ज्ञान में टिका हुआ सर्वत्र प्रीती को त्यागने वाला जीवन मुक्त पुरुष यदि यज्ञ के लिये कामों को करे भी तो वे सब उसके काम लीन हो जाते हैं, अर्थात् उसको कोई कर्म नहीं लगता।

ब्रह्म अनिल अरु ब्रह्म हवि, होता ब्रह्म अनूप।
अर्पण ब्रह्म समाधि यह, कर्महु ब्रह्म स्वरूप॥

यज्ञ में अग्नि भी ब्रह्म है, जो पदार्थ होम किया जाता है वह भी ब्रह्म है, हवन करने वाला भी ब्रह्म रूप है, कर्म भी ब्रह्म है, ब्रह्म को अर्पण करना भी ब्रह्म रूप है, यह ब्रह्म समाधि कहलाती है।

कर्म अकर्म विकर्म त्रिभेदा * गहन कर्म गति कही सु वेदा ॥
गूढ़ विषय सुविचारन योगू * बिन समुझे न कटहिं भव रोगू ॥

कर्म अकर्म और विकर्म करके कर्म के तीन भेद हैं कर्म की गति बड़ी गहरी है, सो वेद में कही गई है। यह कर्म का विषय गूढ़ है, और अच्छी तरह विचार करने के लायक़ है, इस कर्म की गति को न समझने से संसार रोग निवृत्त नहीं हो सकता।

लखहि अकर्महिं कर्म महँ, कर्म अकर्मन माहिं ।
सर्व कर्म कृत युक्त सो, या महँ संशय नाहिं ॥

कर्म में जो अकर्म को देखता है, और अकर्म में कर्म को देखता है वह सर्व कर्मों का करने वाला और योग युक्त है इसमें कोई संशय नहीं है।

भाव यह है कि कर्म करते हुए भी आत्मा कुछ नहीं करता, इसलिये वह कर्म भी आत्मा के लिये तो अकर्म रूप ही है यह तो कर्म में अकर्म को देखना है। और आत्मा कुछ नहीं करता तो भी आत्मा के आश्रित शरीर से सब काम होते ही हैं, यह अकर्म में कर्म का देखना है। अथवा जो "मैं कर्म न करूँगा" इस अभिमान से कर्म नहीं करता वह भी कर्म न करने के अभिमान रूप कर्म को करता है, यह अकर्म में कर्म को देखना है।

सब आरम्भ करहि बिनु कामा * रहि निर्लेप सदा सुख धामा ॥
ज्ञान अनिल महँ कर्म जरावहि * सो बुध चतुरन माहिं कहावहि ॥

सब आरम्भों को कामना छोड़ कर करे, कर्मों में निर्लेप रहना सबही सुख की राशि है। ज्ञान रूप अग्नि में कर्मों को भस्म करदे ऐसा जो पुरुष है वह बुद्धिमानों में चतुर कहलाता है।

कर्म फलन कर आश दुराई * तजि आश्रय रह तृप्त सदाई ॥
कर्मन महँ जु प्रवृत्तहु होई * ता कहँ कर्म लगत नहिं कोई ॥

कर्म फलों की आशा को छोड़ कर और सब प्रकार के आश्रय को त्याग कर जो सदा तृप्त रहता है, वह यदि कर्मों में प्रवृत्त भी हो तो उसको कोई कर्म बन्धन का हेतु नहीं होता।

आशा रहित सु मन वश कीन्हा॥ सर्व परिग्रह पुनि तजि दीन्हा॥
करहि कर्म केवल तन हेतू॥ ता कहँ पाप न कुरु कुल केतू॥

आशाओं से रहित होकर उसने मन को वश में किया हुआ है और सब प्रकार का एकत्रित करना जिसने त्याग दिया है। वह कर्म केवल शरीर निर्वाह के निमित्त करता है उसको हे अर्जुन! कोई पाप नहीं लगता।

सहज प्राप्त महँ तुष्ट प्रवीना॥ द्वन्द्व रहित तिमि मत्सर हीना॥
सिद्धि असिद्धि भई सम जेही॥ कर्महु करहिं न बन्धन तेही॥

वह जो कुछ सहज ही प्राप्त हो जाता है, उसमें सन्तुष्ट रहता है सब प्रकार के द्वन्द्वों से अलग है और अभिमान रहित है किसी कार्य की सिद्धि और असिद्धि उसके लिये समान ही है, ऐसे पुरुष को कर्म बन्धन नहीं कर सकता।

जीवन मुक्त संग कहँ त्यागी॥ ज्ञानावस्थित परम विरागी।
यज्ञ हेतु जो करमहु करई॥ ते सब कर्म लीन हुई रहई।

परम वैराग्यवान् ज्ञान में टिका हुआ सर्वत्र प्रीती के त्यागने वाला जीवन मुक्त पुरुष यदि यज्ञ के लिये कामों को कर भी तो वे सब उसके काम लीन हो जाते हैं, अर्थात् उसको कोई कर्म नहीं लगता।

ब्रह्म अनिल अरु ब्रह्म हवि, होता ब्रह्म अनूप।
अर्पण ब्रह्म समाधि यह, कर्महु ब्रह्म स्वरूप॥

यज्ञ में अग्नि भी ब्रह्म है, जो पदार्थ होम किया जाता है वह भी ब्रह्म है, हवन करने वाला भी ब्रह्म रूप है, कर्म भी ब्रह्म है, ब्रह्म को अर्पण करना भी ब्रह्म रूप है, यह ब्रह्म समाधि कहलाती है।

ऐसन ब्रह्म यज्ञ जे करहीं ॐ ब्रह्महिं प्राप्त होय ते रहहीं ॥

इस तरह ब्रह्म यज्ञ को जो लोग करते हैं वे ब्रह्म को ही प्राप्त हो रहते हैं अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

देवन पूजि करैं बहु यज्ञ अनेक करैं पुनि आन विधी ॥
यज्ञहि ते फिरि यज्ञ करैं करि ब्रह्महिं अग्नि सु ज्ञान निधी ॥
कैइक तो करि संयम अग्नि सु इन्द्रिन की हवि दैंय सुधी ॥
औरन इन्द्रिय अग्निहि में करि होम करी विषया अवधी ॥

कोई लोग देवताओं को पूज कर बहुत प्रकार का यज्ञ करते हैं, और कोई और ही प्रकार से यज्ञ करते हैं। वे ज्ञानी ब्रह्म ही को अग्नि मान करके यज्ञ के द्वारा यज्ञ को करते हैं। कोई ज्ञानी तो संयम रूपी अग्नि में इन्द्रियों का होम कर देते हैं। और लोग इन्द्रिय रूपी अग्नि में विषया का होम कर देते हैं।

करहिं अग्नि मन संयम रूपी * कछु मुनि ज्ञानी ज्ञान स्वरूपी ॥
इन्द्रिय प्राण कर्म हवि देहीं * पाप नशाय मुक्ति पद लेहीं ॥

कोई मननशील ज्ञानी ज्ञान स्वरूपी मनो निग्रह रूप अग्नि में इन्द्रियों के और प्राणों के कर्मों का (श्वासोच्छ्वास) हवन करते हैं।

ज्ञान द्रव्य तप आदिक यागा * वेदाध्ययन विशेष विभागा ॥
जे जन यती कठिन व्रत धारी * करहिं अनेकन यज्ञ विचारी ॥

जो यती पुरुष कठिन व्रतों को धारण करने वाले हैं, वे अनेक प्रकार के यज्ञों को विचार सहित करते हैं, उनके और भी विशेष भाग ज्ञान यज्ञ, तप यज्ञ, द्रव्य यज्ञ और वेदों का पठन रूप यज्ञ आदिक हैं।

रोकि निकारि वायु पुनि लीना * कुम्भक रेचक पूरक तीना ॥
प्राणायाम करत कहुँ योगी * परमारथी प्रपञ्च वियोगी ॥

प्राणवायु के रोकने को कुम्भक कहते हैं, अपानवायु को निकालने को रेचक कहते हैं और प्राणवायु के फिर भीतर भरने को

पूरक कहते हैं, यह प्राणायाम की तीन क्रिया हैं। इस प्रकार से कहीं पर कोई योगी लोग प्राणायाम करते हैं, वे लोग संसार के प्रपञ्च को त्याग कर परमार्थ मार्ग में लगे हुये हैं।

नियत अहार अपर व्रत ठाना * प्राणहिं होम करहिं पुनि प्राणा॥
याजक ये सब लोग कहावहिं * यज्ञहि करि निज पाप नशावहिं॥

दूसरे लोग अपने अहार को नियमित करके प्राणों में प्राणों का हवन करते हैं। यह सब लोग यज्ञ के करने वाले कहाते हैं और यज्ञों के द्वारा अपने पापों का नाश करते हैं।

यज्ञ शिष्ट जे भोजन करहीं * ते लहि ब्रह्म सनातन तरहीं॥
यज्ञ हीन कहँ नहिं यह लोका *कहहु तिनहिं पुनि किमि परलोका॥

जो पुरुष यज्ञ से बचा हुआ भोजन करते हैं वे सनातन-ब्रह्म को प्राप्त होकर तर जाते हैं। यज्ञ हीन पुरुषों को इस लोक में भी सिद्धि नहीं होता तो फिर परलोक की क्या चरचा है। अर्थात् यज्ञ हीनों को यह लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं।

मुमुक्षु लोगों को यह बात समझने की ज़रूरत है कि हवन करने ही को यज्ञ नहीं कहते किन्तु जो कर्म मनुष्य को ऐहिक और पारलौकिक सिद्धि करने वाला है वही यज्ञ है अपने वर्णाश्रम के धर्म कर्म भी यज्ञ रूप ही हैं; समझने के लिये दान देना भी यज्ञ रूप है, दूसरे की भलाई करना भी यज्ञ रूप है, ईश्वर भजन करना भी यज्ञ रूप है क्षत्रियों के लिये लड़ना भी यज्ञ रूप है इत्यादि।

यज्ञन कर विस्तार बहु, कीन्ह वेद भगवान।
ते सब उपजहिं कर्म सन, मुक्ति हेतु यह ज्ञान॥

वेद में यज्ञों का बहुत कुछ विस्तार किया है वे सब कर्म से उत्पन्न होते हैं, यह कर्म की मीमांसा का ज्ञान मुक्ति का हेतु होता है।

द्रव्यादिक श्रृणु यज्ञ अनेका * ज्ञान यज्ञ सम पै नहिं एका ॥
अखिल कर्म जे वेदन गाये * होहिं समाप्त ज्ञान इक पाये ॥

हे अर्जुन ! सुनो द्रव्य यज्ञ से आदि लेकर बहुत प्रकार के यज्ञ कहे गये हैं किन्तु ज्ञान यज्ञ के समान कोई यज्ञ नहीं है, जितने कर्म वेद में कहे गये हैं, ज्ञान के प्राप्त होने पर उन सबका अन्त हो जाता है।

जाना चह जु ज्ञान कर मरमा * ज्ञानिहिं सेवहिं मन वच करमा ॥
नमस्कार करि वारम्बारा * पुनि पुनि पूछहि प्रश्न उदारा ॥

जो पुरुष ज्ञान के तत्त्व को समझना चाहे उसको चाहिये कि ज्ञानी पुरुष की सेवा मनसा, वाचा, कर्मणा से करे। ज्ञानी को वारम्बार नमस्कार करके उनसे बड़े प्रश्नों को फिर फिर कर पूछे।

तव प्रसन्न हुइ मुनि विज्ञानी * ज्ञान सिखावहिं भेद बखानी ॥
जिहि पाये पुनि मोह न होई * मन महँ शंका रहहि न कोई ॥

तब ज्ञानवान् मुनि प्रसन्न होकर ज्ञान का उपदेश विशेष भेद बतलाते हुए करेंगे। जिस ज्ञान को पाकर फिर कभी मोह उत्पन्न नहीं होता और मन में कोई शंका नहीं रहती।

निज आत्मा महँ तिमि मो माहीं * ज्ञान प्रभाव सुभूत लखाहीं ॥

सारे भूत प्राणी ज्ञानके प्रभाव से अपने आत्मा में उसी प्रकार मेरे में भी प्रतीत होने लगेंगे (अर्थात् अपने में, मेरे में और भूत प्राणियों में कोई भेद तुझे न दीखेगा।)

भलहि अधरमी तू किन होहू * पापी अधम शिरोमणि तोहू ॥
विनहिं प्रयास जाय तरि पारा * नौका ज्ञान बैठि मझधारा ॥

यदि तू कितना ही अधरमी क्यों न हो, और अधम से भी अधम होवे तो भी ज्ञान रूपी नौका में बैठ कर संसार रूपी नदी को विना ही मिहनत के तर कर पार हो जायगा।

सूखे काष्टहि अग्नि जिमि, सहजहि देत जराय।
ज्ञान अनिल तिमि कर्म सब, भस्म करहि छिन मांय ॥

जिस तरह आग सूखे काठ को सहज ही जला देती है, उसी प्रकार ज्ञान रूप अग्नि सब कर्मों को क्षण भर में भस्म कर देती है।

कर्म बहुत जप तप व्रत दाना ❀ कछु पवित्र नहिं ज्ञान समाना ॥
योग किये चिरकाल सुज्ञाना ❀ मन महँ प्रकटहि स्वयं सुजाना ॥

कर्म नाना प्रकार के हैं, जैसे जप, तप, व्रत, दान किन्तु ज्ञान के समान पवित्र कोई भी पदार्थ नहीं है। वही ज्ञान बहुत काल तक योग करते रहने से हे सुजान अर्जुन ! हृदय में अपने आप प्रकट हो जाता है।

पावहि ज्ञान जितेन्द्रिय कोई ❀ श्रद्धा सहित जु तत्पर होई ॥
ज्ञान पाय सुख मिलहि अगाधा ❀ सहजहि कटइ सकल भव बाधा ॥

ज्ञान को कोई इन्द्रियों को जीतने वाला पुरुष ही पाता है, जो श्रद्धा सहित निरन्तर प्रयत्न में लगा रहता है। ज्ञान प्राप्त होने पर अगाध सुख मिलता है और सब संसार के क्लेशों का नाश हो जाता है।

संशय सहित रहित विश्वासा ❀ अबुध पुरुष यह तीनिउ नाशा ॥
पै जाके उर संशय भाई ❀ सो इहि लोक न पर सुख पाई ॥

अज्ञानी पुरुष, श्रद्धा रहित पुरुष, संशयवान् पुरुष इन तीनों का नाश होता है, किन्तु संशयवान् पुरुष को तो न इस लोक में सुख है न परलोक में सुख है।

कर्म त्याग करि योग प्रभावा ❀ संशय ज्ञान प्रताप नशावा ॥
आत्म स्वरूप निरति जिन पाई ❀ कर्म न बाँधत तिन कहँ भाई ॥

हे अर्जुन ! जिन्होंने योग द्वारा सब कर्मों को परमात्मा में त्याग दिया अर्थात् अर्पण कर दिया है, और ज्ञान के प्रभाव से

जिनका सब संशय नष्ट हो गया है और आत्म स्वरूप में जो लीन हो रहे हैं उन ज्ञानी पुरुषों को कर्म का वन्धन नहीं होता।

अस जिय जानि ज्ञान असि धारी॥मन कर संशय निपट निवारी॥
भारत उठहु योग आचरहू ※ निज मन मोह सकल परिहरहू॥

ऐसा जानकर और ज्ञान रूपी तलवार को धारण करके मन के संशय को विलकुल नाश करके हे अर्जुन! तुम उठो और योग का आचरण करो, अपने मन के मोह को दूर करो।

ज्ञान रूप नौका अहइ, गहन नदी संसार।
पवन कृपा नंदलाल की, श्री गुरू खेवन हार॥

संसार रूपी नदी के तरने के लिये ज्ञान नौका के समान है, श्रीकृष्ण की जो दया है वह अनुकूल वायु है, और श्रीगुरु इस नौका के खेने वाले हैं।

इति चतुर्थ अध्याय।

पञ्चम अध्याय

अर्जुन उवाच

कर्म त्याग पुनि कर्म हू, कृष्ण सराहत दोय।
श्रेय होय जो दुहुँन महँ, निश्चित कहिये सोय॥

अर्जुन कहने लगा कि हे कृष्ण! आप कर्म त्याग और कर्म करना इन दोनों की प्रशंसा करते हो, इन दोनों में जो श्रेष्ठ हो वह निश्चय करके आप मुझ से कहिये।

भगवान् बोले

कर्म योग अथवा संन्यासा * दुहुँ अति उत्तम भव दुख नासा॥
तदपि कहौं मत भावत जीका * कर्म योग मुहि लागत नीका॥

भगवान् कहने लगे कि कर्मयोग अथवा कर्म संन्यास दोनों ही उत्तम हैं और संसार दुःख के नाश करने वाले हैं। तो भी मैं अपने मत को कहता हूँ कि मुझे कर्म योग ही अच्छा मालूम होता है।

इच्छा द्वेष लेश नहिं जेही * नित संन्यासिहि मानहुँ तेही॥
महाबाहु सो रह निरद्वन्दा * सहजहि छुटइ जगत भ्रम फन्दा॥

जिस मनुष्य के अन्दर इच्छा, राग, द्वेष, इत्यादि नहीं है, वह सदा संन्यासी ही है। हे महाबाहो! वह पुरुष द्वन्द्वों से रहित होता और जगत् के भ्रम रूप फन्दे से सहज ही में छूट जाता है।

सांख्य योग जिन पृथक बखाना * नहिं पण्डित ते किन्तु अयाना॥
एकहि ग्रहण करइ मन लाई * दोउन कर फल सहज सु पाई॥

जो लोग ज्ञान को और कर्मयोग को पृथक् कहते हैं, वे पंडित नहीं हैं किन्तु अज्ञानी हैं क्योंकि एक को भी भले प्रकार ग्रहण करने से दोनों का जो फल है वह सहज ही प्राप्त हो जाता है।

सांख्य प्रताप मिलहि जो थाना ॐ मिलहि योग बल सोय सुजाना॥
सांख्य योग कहँ एक समानहिं ॐ जो मानहिं भल मर्म सु जानहिं॥

साँख्य के द्वारा जो स्थान प्राप्त होता है, हे चतुर अर्जुन! कर्मयोग से भी वही मिलता है। साँख्य और योग को जो एक समान ही मानते हैं वे लोग यथार्थ भेद के जानने वाले हैं।

श्रणु संन्यास कठिन बिन योगा ॐ अति प्रयास पुनि पावहिं लोगा॥
योग युक्त मुनि अल्प प्रयासा ॐ लहहिं परम गति छुटि भवपासा॥

हे अर्जुन! योग के बिना संन्यास अत्यन्त कठिन है और बड़ी मिहनत से प्राप्त होता है। किन्तु योगवान् मनुष्य थोड़े ही प्रयत्न से ब्रह्म गति को पा लेता है और संसार रूपी फाँसी से छूट जाता है।

योग युक्त मुनि शुद्ध चित, मन इन्द्रिय वश लाय।
जानहिं भूतन आत्मवत, कर्महुँ करि न लिपाय॥

शुद्ध चित्त वाले योग युक्त मुनीश्वर लोग मन और इन्द्रियों को वश में लाकर सब प्राणियों को आत्मा के समान देखते हुए कर्मों को करते हुए भी उन कर्मों में लिप्त नहीं होते।

मैं न करों कछु निश्चय ताही ॐ तत्व विवेक भयउ उर जाही
देखत सुनत छुअत अरु सूँघत ॐ खावत बोलत सोवत घूँमत।
त्यागत गहत सुलेत उसासू ॐ दृग खुल मिचु उर यह विश्वास।
इन्द्रिय निज निज विषयन माहीं ॐ सहज स्वभाव सकल बरतार्हि
अस उर आनि सु मुनि विज्ञानी ॐ कर्म विलग जल कमल प्रमानी

जिस योगी पुरुष को तत्व का ज्ञान हो गया है, वह मन अपने मनमें यह निश्चय रखता है कि "मैं कुछ नहीं करता" ज्ञानी पुरुष देखते हुए, सूँघते हुए, सुनते हुए, छूते हुए, खाते हु

चलते हुए, सोते हुए, बोलते हुए, छोड़ते हुए, ग्रहण करते हुए, श्वास लेते हुए, नेत्रों को खोलते और बन्द करते हुए, यही निश्चय रखता है कि इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों में स्वभाव से वर्त रही हैं, (अर्थात् इन सब कर्मों का करने वाला अपनी आत्मा को नहीं मानता क्योंकि आत्मा तो केवल प्रकाश करने वाला साक्षी मात्र है कर्मों का करने वाला नहीं है) ऐसा मान वह ज्ञानी पुरुष कर्मों में लिप्त नहीं होता जैसे जल में कमल।

कर्म ब्रह्म कहँ अरपण करहीं ❀ संग त्यागि पुनि जे आचरहीं॥
ते नहिं पापन इमि लिपटाहीं ❀ कमल पत्र जिमि नहिं जलमाहीं॥

जो पुरुष सब प्रीति को त्याग कर कर्म का आचरण करते हैं, और उन कर्मों को ईश्वर के अर्पण कर देते हैं, वे पुरुष पापों से इस तरह लिप्त नहीं होते, जिस तरह कि कमल का पत्ता पानी में लिप्त नहीं होता।

योगी करहि कर्म तजि प्रीती ❀ अन्तःकरण शुद्धि की रीती॥
मन बुद्धी तन केर अधारा ❀ अथवा केवल इन्द्रिन द्वारा॥

योगी पुरुष कर्मों में प्रीति को त्याग कर अन्तःकरण शुद्ध करने के लिये कर्मों को करते हैं, वे योगी लोग कर्म को मन बुद्धि शरीर अथवा केवल इन्द्रियों के आधार से करते हैं।

ते पुनि तजहिं कर्म फल नाना ❀ लहहिं मोक्ष पद शान्ति निधाना॥
योग हीन नर फल अभिमानी ❀ इच्छा हेतु बँधहिं अज्ञानी॥

वे ज्ञानी नाना प्रकार के कर्म फलों की इच्छा को छोड़ कर कर्म को करते हैं और इस प्रकार से शान्ति स्वरूप जो मोक्षपद है, उसको प्राप्त होते हैं। योग रहित अज्ञानी पुरुष फल की इच्छा के भाव से बन्धन को प्राप्त होते हैं।

मनहिं जीति सुख सन बसहि, नव द्वारे पुर माहिं।
तजि मन ते सो कर्म कछु, करहि करावहि नाहिं॥

जो ज्ञानी पुरुष मन को जीत कर नवद्वार वाले इस शरीर रूपी नगर में सुख से निवास करता है, वह सर्व कर्मों को मन से त्याग कर न कुछ करता है न करवाता है।

प्रभु न सृजहिं लोक कर करमा * नहिं करतृत्व आदि बहु धरमा॥
कर्म फलन कर योगहु नाहीं * होहि स्वभाव प्रवृत्त सब ठाहीं॥

ईश्वर न तो लोगों के कर्म को न कर्त्तापन को उत्पन्न करता है, न कर्म फल के संयोग को उत्पन्न करता है, इन सब कार्यों को कराने में जीवों का स्वभाव ही प्रवृत्त होता है।

नहिं काहू कर पुण्य न पापू * ग्रहण करहिं विभु ईश्वर आपू॥
ज्ञानहिं ढापि लयउ अज्ञाना * कीन्हेसि मोहित जीव जहाँना॥

व्यापक ईश्वर किसी के पाप और पुण्य को ग्रहण नहीं करता। अज्ञान ने ज्ञान को ढक रक्खा है, और संसार के सब जीवों को मोहित कर रक्खा है।

निज अज्ञान ज्ञान के द्वारा * नाश करहिं जे पुरुष उदारा॥
ज्ञान प्रकाश तिनहिं इमि होई * सूर्य तेज जिमि तिमिरहि खोई॥

जो उदार पुरुष अपने अज्ञान को ज्ञान के द्वारा दूर कर देते हैं, उनको ज्ञान का प्रकाश इस प्रकार से होता है, जैसे कि सूर्य का प्रकाश अँधेरे को दूर करके होता है।

ब्रह्म निष्ठ मुनि परम सुहाये * भजहिं ब्रह्म कहँ मन बुधि लाये।
ज्ञान प्रभाव सु पाप नशाई * बहुरि न जन्म मुक्ति पद पाई।

ब्रह्म में टिके हुए मुनीश्वर लोग अत्यन्त शोभायमान होते हैं वे लोग मन और बुद्धि को लगा कर ब्रह्म का ही भजन करते रहते हैं। ज्ञान के प्रभाव से वे लोग सब पापों का नाश करके मुक्तिपद पाकर फिर जन्म नहीं लेते।

कूकर डोम सुरभि गज कोऊ * विद्या विनीत विप्र किन होऊ।
पण्डितजन कहँ सबहि समाना * समदर्शी उर भेद न आना।

कुत्ता, गाय, हाथी, भङ्गी, अथवा विद्या और विनय सम्पन्न ब्राह्मण क्यों न हो, किन्तु ज्ञानी लोग सबको समान भाव से देखते हैं, वे समदर्शी लोग भेद भाव को मन में नहीं लाते।

जे जन समता धारहीं, विजय करहिं संसार।
व्यापक ब्रह्म समानही, इमि ते ब्रह्म अधार॥

जो पुरुष समानता को धारण करते हैं वे संसार को जीत लेते हैं, क्योंकि ब्रह्म सब स्थान में समानता से व्यापक है और वे समदर्शी लोग समानता में टिके हुए हैं, इस लिये वे लोग ब्रह्म के ही आधार हैं अथवा ब्रह्म में ही टिके हुए हैं ऐसा समझना चाहिये।

नहिं प्रिय वस्तु पाय हरषाना * अप्रिय सन न द्वेष कछु माना॥
ब्रह्म निष्ठ तिमि ब्रह्महि जाना * स्थिर बुद्धि गत मोह सुजाना॥

वे पुरुष प्रिय वस्तु को पाकर ख़ुश नहीं होते और अप्रिय वस्तु को पाकर उसमें द्वेष नहीं करते, ऐसे ब्रह्म के जानने वाले और ब्रह्म में टिके हुए पुरुष स्थिर बुद्धि वाले चतुर और मोह रहित होते हैं।

विषयन महँ मन रहइ अलीना * निज स्वरूप सुख लीन प्रवीना॥
ब्रह्मयोग युत मन जिन केरा * ते पावहिं सुख अचल घनेरा॥

जिन चतुर पुरुषों का मन विषयों से विरक्त रहता है और अपने आत्म स्वरूप में लगा रहता है, इस प्रकार ब्रह्म में योग युक्त जिनका मन है वे अचल और बहुत आनन्द को पाते हैं।

इन्द्रिय जनित भोग दुखदाई * उपजि नशावहिं नहिं थिरताई॥
अस निश्चय करि भल मन माहीं * छर विषयन महँ बुध न रमाहीं॥

इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले भोग दुःख के देने वाले हैं, वे उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं, उनमें स्थिरता नहीं है, ऐसा समझ कर ज्ञानी पुरुष क्षणिक विषयों में नहीं रमते।

काम क्रोध कर वेग महाना * सहइ भये बिनु तन अवसाना॥
योग युक्त सो पुरुष गँभीरा * परम सुखी तिहि जानहु धीरा॥

काम और क्रोध का वेग अत्यन्त बलवान् होता है, इस वेग को जो पुरुष मरण के प्रथम ही सहन करता है, वह योगयुक्त गंभीर पुरुष परम सुखी और धैर्य वाला है ऐसा समझना चाहिये।

आत्म रमण अरु आत्म सुख, आत्महिं वृत्ति लगाय।
ब्रह्म रूप योगी भयउ, ब्रह्महिं माँहि समाय॥

आत्मा में ही रमण करने वाला आत्म सुख और आत्मा ही में वृत्ति को जो लगाये हुए है वह योगी ब्रह्म रूप हुआ, ब्रह्म ही में लीन हो जाता है।

ऋषि जन मनहिं राखि स्वाधीना * संशय रहित सु पाप विहीना॥
सब भूतन कर हित अनुरागे * पद निरवाण लहहिं सुख पागे॥

ऋषि लोग मन को वश में करके संशय और पाप से रहित होकर सब भूतों के हित में लगे हुए सुख पूर्वक मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

काम क्रोध कर वेग दुराई * यती पुरुष मन वश महँ लाई॥
आत्म ज्ञान रत परम सुजाना * बरतहिं सदा ब्रह्म निरवाणा॥

काम क्रोध. के वेग से रहित यती पुरुष मन को स्वाधीन करके आत्म ज्ञान में लगे हुए सदा ब्रह्म रूप निर्वाण पद में ही वर्त्तते हैं (अर्थात् वे लोग जीवन मुक्त हैं।)

इन्द्रिय विषयन दूरि भगाई * पुनि भ्रकुटिन बिच दृष्टि लगाई॥
नासा मध्य जु प्राण अपाना * योगी जन करि तिनहिं समाना॥

इन्द्रियों के विषयों को त्याग कर दोनों भौंहों के बीच में निगाह को रोक कर नाक में जो प्राण और अपान चलते हैं उनको समान करके।

इन्द्रिय मन बुधि निज वश आनी * मोक्ष परायण मुनि विज्ञानी ॥
जे इच्छा भय क्रोध विहीना * सदा मुक्त ते पुरुष प्रवीना ॥

इन्द्रिय मन और बुद्धि को अपने वश में लाकर मोक्ष ही को परम मानने वाले विज्ञानी (अनुभवी) मुनीश्वर लोग जो इच्छा, भय, क्रोध, से रहित हैं वे चतुर लोग सदा मुक्त ही हैं।

मैं भोगी तप यज्ञ कर, भूतन मित्र समान।
परम शान्ति नर पावही, मुहि जगदीश्वर जान ॥

मैं सब तप और यज्ञ के फल को भोगने वाला हूँ, और सब भूतों का समान मित्र हूँ। इस प्रकार मुझे जगत का ईश्वर समझ कर मनुष्य परम शान्ति को प्राप्त होता है।

इति पञ्चम अध्यायं ।

काम क्रोध कर वेग महाना * सहइ भये बिनु तन अवसाना ॥
योग युक्त सो पुरुष गँभीरा * परम सुखी तिहि जानहु धीरा ॥

काम और क्रोध का वेग अत्यन्त बलवान् होता है, इस वेग को जो पुरुष मरण के प्रथम ही सहन करता है, वह योगयुक्त गंभीर पुरुष परम सुखी और धैर्य वाला है ऐसा समझना चाहिये।

आत्म रमण अरु आत्म सुख, आत्महिं वृत्ति लगाय।
ब्रह्म रूप योगी भयउ, ब्रह्महिं माँहि समाय ॥

आत्मा में ही रमण करने वाला आत्म सुख और आत्मा ही में वृत्ति को जो लगाये हुए है वह योगी ब्रह्म रूप हुआ, ब्रह्म ही में लीन हो जाता है।

ऋषि जन मनहिं राखि स्वाधीना * संशय रहित सु पाप विहीना ॥
सब भूतन कर हित अनुरागे * पद निरवाण लहहिं सुख पागे ॥

ऋषि लोग मन को वश में करके संशय और पाप से रहित होकर सब भूतों के हित में लगे हुए सुख पूर्वक मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

काम क्रोध कर वेग दुराई * यती पुरुष मन वश महँ लाई ॥
आत्म ज्ञान रत परम सुजाना * वरतहिं सदा ब्रह्म निरवाणा ॥

काम क्रोध, के वेग से रहित यती पुरुष मन को स्वाधीन करके आत्म ज्ञान में लगे हुए सदा ब्रह्म रूप निर्वाण पद में ही वर्तते हैं (अर्थात् वे लोग जीवन मुक्त हैं।)

इन्द्रिय विषयन दूरि भगाई * पुनि भृकुटिन बिच दृष्टि लगाई ॥
नासा मध्य जु प्राण अपाना * योगी जन करि तिनहिं समाना ॥

इन्द्रियों के विषयों को त्याग कर दोनों भौहों के बीच में निगाह को रोक कर नाक में जो प्राण और अपान चलते हैं उनको समान करके।

इन्द्रिय मन बुधि निज वश आनी * मोक्ष परायण मुनि विज्ञानी ॥
जे इच्छा भय क्रोध विहीना * सदा मुक्त ते पुरुष प्रवीना ॥

इन्द्रिय मन और बुद्धि को अपने वश में लाकर मोक्ष ही को परम मानने वाले विज्ञानी (अनुभवी) मुनीश्वर लोग जो इच्छा, भय, क्रोध, से रहित हैं वे चतुर लोग सदा मुक्त ही हैं।

मैं भोगी तप यज्ञ कर, भूतन मित्र समान।
परम शान्ति नर पावही, मुहि जगदीश्वर जान ॥

मैं सब तप और यज्ञ के फल को भोगने वाला हूँ, और सब भूतों का समान मित्र हूँ। इस प्रकार मुझे जगत का ईश्वर समझ कर मनुष्य परम शान्ति को प्राप्त होता है।

इति पञ्चम अध्याय ।

काम क्रोध कर वेग महाना * सहइ भये बिनु तन अवसाना ॥
योग युक्त सो पुरुष गँभीरा * परम सुखी तिहि जानहु धीरा ॥

काम और क्रोध का वेग अत्यन्त बलवान् होता है, इस वेग को जो पुरुष मरण के प्रथम ही सहन करता है, वह योगयुक्त गंभीर पुरुष परम सुखी और धैर्य वाला है ऐसा समझना चाहिये।

आत्म रमण अरु आत्म सुख, आत्महिं वृत्ति लगाय।
ब्रह्म रूप योगी भयउ, ब्रह्महिं माँहि समाय ॥

आत्मा में ही रमण करने वाला आत्म सुख और आत्मा ही में वृत्ति को जो लगाये हुए है वह योगी ब्रह्म रूप हुआ, ब्रह्म ही में लीन हो जाता है।

ऋषि जन मनहिं राखि स्वाधीना * संशय रहित सु पाप विहीना ॥
सब भूतन कर हित अनुरागे * पद निरवाण लहहिं सुख पागे ॥

ऋषि लोग मन को वश में करके संशय और पाप से रहित होकर सब भूतों के हित में लगे हुए सुख पूर्वक मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

काम क्रोध कर वेग दुराई * यती पुरुष मन वश महँ लाई ॥
आत्म ज्ञान रत परम सुजाना * वरतहिं सदा ब्रह्म निरवाणा ॥

काम क्रोध के वेग से रहित यती पुरुष मन को स्वाधीन करके आत्म ज्ञान में लगे हुए सदा ब्रह्म रूप निर्वाण पद में ही वर्तते हैं (अर्थात् वे लोग जीवन मुक्त हैं।)

इन्द्रिय विषयन दूरि भगाई * पुनि भ्रकुटिन विच दृष्टि लगाई ॥
नासा मध्य जु प्राण अपाना * योगी जन करि तिनहिं समाना ॥

इन्द्रियों के विषयों को त्याग कर दोनों भौहों के बीच में निगाह को रोक कर नाक में जो प्राण और अपान चलते हैं उनको समान करके।

इन्द्रिय मन बुधि निज वश आनी * मोक्ष परायण मुनि विज्ञानी ॥
जे इच्छा भय क्रोध विहीना * सदा मुक्त ते पुरुष प्रवीना ॥

इन्द्रिय मन और बुद्धि को अपने वश में लाकर मोक्ष ही को परम मानने वाले विज्ञानी (अनुभवी) मुनीश्वर लोग जो इच्छा, भय, क्रोध, से रहित हैं वे चतुर लोग सदा मुक्त ही हैं ।

मैं भोगी तप यज्ञ कर, भूतन मित्र समान ।
परम शान्ति नर पावही, मुहि जगदीश्वर जान ॥

मैं सब तप और यज्ञ के फल को भोगने वाला हूँ, और सब भूतों का समान मित्र हूँ । इस प्रकार मुझे जगत का ईश्वर समझ कर मनुष्य परम शान्ति को प्राप्त होता है ।

इति पञ्चम अध्याय ।

काम क्रोध कर वेग महाना * सहइ भये बिनु तन अवसाना ॥
योग युक्त सो पुरुष गँभीरा * परम सुखी तिहि जानहु धीरा ॥

काम और क्रोध का वेग अत्यन्त बलवान् होता है, इस वेग को जो पुरुष मरण के प्रथम ही सहन करता है, वह योगयुक्त गंभीर पुरुष परम सुखी और धैर्य वाला है ऐसा समझना चाहिये।

आत्म रमण अरु आत्म सुख, आत्महिं वृत्ति लगाय।
ब्रह्म रूप योगी भयउ, ब्रह्महिं माँहि समाय ॥

आत्मा में ही रमण करने वाला आत्म सुख और आत्मा ही में वृत्ति को जो लगाये हुए है वह योगी ब्रह्म रूप हुआ, ब्रह्म ही में लीन हो जाता है।

ऋषि जन मनहिं राखि स्वाधीना * संशय रहित सु पाप विहीना॥
सब भूतन कर हित अनुरागे * पद निरवाण लहहिं सुख पागे ॥

ऋषि लोग मन को वश में करके संशय और पाप से रहित होकर सब भूतों के हित में लगे हुए सुख पूर्वक मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

काम क्रोध कर वेग दुराई * यती पुरुष मन वश महँ लाई ॥
आत्म ज्ञान रत परम सुजाना * वरतहिं सदा ब्रह्म निरवाणा ॥

काम क्रोध, के वेग से रहित यती पुरुष मन को स्वाधीन करके आत्म ज्ञान में लगे हुए सदा ब्रह्म रूप निर्वाण पद में ही वर्तते हैं (अर्थात् वे लोग जीवन मुक्त हैं।)

इन्द्रिय विषयन दूरि भगाई * पुनि भ्रकुटिन बिच दृष्टि लगाई॥
नासा मध्य जु प्राण अपाना * योगी जन करि तिनहिं समाना॥

इन्द्रियों के विषयों को त्याग कर दोनों भौंहों के बीच में निगाह को रोक कर नाक में जो प्राण और अपान चलते हैं उनको समान करके।

इन्द्रिय मन बुधि निज वश आनी * मोक्ष परायण मुनि विज्ञानी ॥
जे इच्छा भय क्रोध विहीना * सदा मुक्त ते पुरुष प्रवीना ॥

इन्द्रिय मन और बुद्धि को अपने वश में लाकर मोक्ष ही को परम मानने वाले विज्ञानी (अनुभवी) मुनीश्वर लोग जो इच्छा, भय, क्रोध, से रहित हैं वे चतुर लोग सदा मुक्त ही हैं।

मैं भोगी तप यज्ञ कर, भूतन मित्र समान ।
परम शान्ति नर पावही, मुहि जगदीश्वर जान ॥

मैं सब तप और यज्ञ के फल को भोगने वाला हूँ, और सब भूतों का समान मित्र हूँ। इस प्रकार मुझे जगत का ईश्वर समझ कर मनुष्य परम शान्ति को प्राप्त होता है।

इति पञ्चम अध्याय ।

छठा अध्याय

भगवान् बोले

सुनहुँ किरीटी ध्यान दै, बोले श्री भगवान।
भेद योग संन्यास कर, अब जो करहुँ बखान॥

श्रीभगवान कहने लगे कि हे अर्जुन! अब जो योग और संन्यास का भेद मैं कहता हूँ उसको ध्यान देकर सुनो।

कर्म फलन कर आश विहाई * नियत कर्म जो करहि सदाई॥
सो योगी संन्यासिहु सोई * नहिं निरग्नि अरु अक्रिय कोई॥

कर्म फलों की इच्छा को त्याग कर जो पुरुष नियत कर्मों को सदा करता है वैही तो योगी है और वही संन्यासी है। जिसने अग्नि का त्याग कर दिया है अथवा जो अक्रिय हो बैठा है वह न तो संन्यासी है न योगी है।

कहु संन्यास कहहिं जिहि लोगू * अर्जुन ताकहँ जानहुँ योगू॥
नहिं सङ्कल्प त्याग बिन होई * योगी कहिये लायक कोई॥

अर्जुन! जिसको लोग संन्यास कहते हैं उसको तुम योग जानो क्योंकि संकल्पों का त्याग किये बिना कोई पुरुष योगी कहाने योग्य नहीं होता।

कर्म मुमुक्षु करहि कछु जेई * मुक्ति हेतु अहँ साधन तेई॥
योगारूढ़ भये पुनि सोई * शम कर हेतु कहत मुनि लोई॥

मुमुक्षुओं के जो कर्म हैं वह मुक्ति के लिये साधन रूप कहे गये हैं, और योग में आरूढ़ हो जाने पर (अर्थात् योग सिद्ध हो

जाने पर) वे ही कर्म शान्ति का हेतु होते है, ऐसा मननशील लोगों का कहना है।

जब विषयन ते होय विरागा * नाना कर्म संग पुनि त्यागा ॥
मन सङ्कल्प त्यागि सब देई * योगारूढ़ कहहिं मुनि तेई ॥

जब विषयों से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है, नाना प्रकार के कर्मों में यह पुरुष प्रीति को त्याग देता है और सब प्रकार के मन के सङ्कल्पों को भी छोड़ देता, ऐसे पुरुष को मुनि लोग योगारूढ़ कहते हैं।

आत्महिसननिज आत्मउधारहि*आत्मनाशनहिंकिमपिविचारहि।
आत्महिं बन्धु आत्म कर जानहुँ * आत्महिं शत्रु आत्म कर मानहुँ ॥

मन से मनुष्य को अपने आत्मा का उद्धार करना चाहिये, अपने आत्मा को नष्ट करने योग्य विचार कभी न करना चाहिये, (हीन कर्मों से आत्मा की अधोगति होती है, यही आत्मा का नाश है) क्योंकि अपना मन ही तो अपना बन्धु है और अपना मन ही अपना शत्रु है।

जे राखहिं मन आत्मवश, तिन कहँ सो मन मीत।
पुनि जे मन के वश रहहिं, तिनहिं सु रिपु विपरीत ॥

जो लोग अपने मन को अपने वश में रखते हैं, उनका मन उनके मित्र के समान है, और जो लोग स्वयं मन के वश में रहते हैं उनके लिये उनका मन ही शत्रु के समान है। ऐसा समझना चाहिये।

जिन मन जीति शान्ति रस चाखा * सदा समाहित आत्महिं राखा ॥
शीत उष्ण सुख दुख सममाना * रहत समान मान अपमाना ॥

जिन्होंने मन को जीता है और जिनको शान्ति प्राप्त हुई है, और जो मन को समता में रखते हैं उनको ठण्ड, गरमी, सुख और दुःख समान ही हैं और वे मान और अपमान को समान ही मानते हैं।

जो जन तृप्त ज्ञान विज्ञाना * इन्द्रिय वश करि आत्म टिकाना ॥
योग युक्त सो मुनि मन मानहिं * माँटी पाहन कनक समानहिं ॥

जो पुरुष ज्ञान और अनुभव को प्राप्त करके तृप्त हुआ है, और इन्द्रियों को वश में करके आत्मा में टिका हुआ है, वह योग-युक्त मुनि मिट्टी, पत्थर, और सोने को अपने मन में एकसा ही जानता है।

उदासीन मध्यस्थ सुमीता * वैरी बन्धु तात विपरीता ॥
साधु असाधु सबहिं सम मानहिं * उत्तम मुनि मन भेद न आनहिं ॥

ऐसा योगी शत्रु, मित्र, सुहृद, उदासीन, मध्यस्थ, बन्धु, जो अपने विमुख हो, साधु, असाधु सब ही में समान बुद्धि रखता है, अपने मन में कोई भेद भाव नहीं लाता।

मनहिं जीति तजि आश विभूरी * सुख साधन संग्रह करि दूरी ॥
योगी करहिं निरन्तर ध्याना * रहहिं अकेलइ निरजन थाना ॥

योगी लोग मन को जीत कर नाना प्रकार की आशाओं को त्याग कर और सांसारिक सुख के साधनों को दूर करके अकेले निर्जन स्थान में रह कर निरन्तर ध्यान का (समाधि का) अभ्यास करे।

आसन रचि सुन्दर शुचि देशू * ऊँच नीच नहिं होय विशेषू ॥
कुश मृग चर्म वस्त्र तिहि ऊपर * दृढ़ आसन धारहि समभू पर ॥

सुन्दर पवित्र स्थान में जो न बहुत नीचा हो, न ऊँचा हो, अपना आसन लगावे—समान भूमि पर पहिले कुश बिछावे, कुश के ऊपर मृगछाला बिछावे, मृगछाला के ऊपर कोई कपड़ा बिछावे उसके ऊपर बैठ कर दृढ़ आसन लगावे (जिसमें सुख से बैठा जाय उसको आसन कहते हैं और एक ही आसन से बहुत देर तक बैठे रहने की सामर्थ्य हो जाय तो आसन सिद्ध हुआ या दृढ़ हुआ कहा जाता है।)

इहि विधि अस्थिर बैठई, रखि मन इन्द्रिय शान्त।
मन इकाग्र करि शुद्धि हित, योग करहि एकान्त॥

इस प्रकार एकान्त में स्थिरता पूर्वक मन और इन्द्रियों को शान्त रखते हुए बैठे और मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योग समाधि का अभ्यास करे।

शिर ग्रीवा तन राखि समाना * अचल होय इत उत न डुलाना॥
अपर दिशन ते दृष्टि हटाई * नासा अग्र भाग तिहि लाई॥

शरीर गर्दन और शिर को एक सीध में रक्खे, इधर उधर हिले डुले नहीं सब ओर से निगाह को हटा कर नाक के अग्र भाग में उस को ठहरावे।

करि चित शान्त न भय लवलेशा * ब्रह्मचर्य व्रत धारि विशेषा॥
मनहिं निरोधि करहि मम ध्याना * योग युक्त हुई परम सुजाना॥

भय आदि दोषों को दूर करके चित्त को शान्त रखते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए; और मन का निरोध करते हुए चतुर पुरुष को चाहिये कि योग युक्त हुआ मेरा ध्यान करे।

इहि विधि सदा योग आचरही * मन कहँ भली भाँति वश करही॥
परम शान्ति निरवाण कहावहि * मम स्वरूप सो सहजहि पावहि॥

इस प्रकार मन को वश में रखते हुए सदा योग का आचरण करे, ऐसा करने से जो परम शान्ति रूप मोक्षपद है उसको मनुष्य मेरे स्वरूप में सहज ही पा लेता है।

योग न हुइ बहु भोजन कीये * नहिं अहार केवल तजि दीये॥
बहु जागरण योग नहिं होई * अरजुन पुनि न सुलभ बहु सोई॥

बहुत खाने से योग सिद्ध नहीं होता, न निराहार रहने से योग होता है, और न बहुत जगने से और न बहुत सोने से योग होता है।

राखहि उचित अहार विहारु * नियमित करहि सकल व्यवहारु ॥
जागहि सोवहि युक्त प्रकारी * तव यह योग होय दुख हारी ॥

उचित अहार और विहार रखना चाहिये, सब कामों को नियमित रूप से करना चाहिये, उचित जगना और सोना चाहिये, ऐसा करने से यह योग दुःखों का हरण करने वाला होता है ।

शान्त होय जब चित्त यह, आत्म शरण महँ जाय ।
रहइ न कोऊ वासना, योगी तबहिं कहाय ॥

जब यह चित्त शान्त होकर आत्मा में स्थित होता है, और सब वासनाओं का नाश हो जाता है तभी यह पुरुष योगी कहलाता है ।

योगिन चित शृणु जिमि ठहराने * सो उपमा अब कहउँ सयाने ॥
पवन रहित थल दीपक वाती * जरहि यथा नहिं तनिक डुलाती ॥

हे अर्जुन ! सुनो योगियों का चित्त इस प्रकार निश्चल होता है जैसे कि वायु रहित स्थान में रक्खे हुए दीपक को बत्ती इधर उधर नहीं हिलती डुलती । इसी प्रकार विषय रूपी वायु से रहित योगियों का मन स्थिर रहता है ।

योग किये मन लह उपरामा * लखि निज रूप तुष्ट सुख धामा ।
अनुभव होय बुद्धि के द्वारा * इन्द्रिय गम्य न सुखसु अपारा ॥

योग करने से मन उपराम को प्राप्त होजाता है, आत्म स्वरूप का साक्षात्कार जो अत्यन्त सुख रूप है उसको पाकर मन सन्तुष्ट हो जाता है ।

यह आत्म स्वरूप का अपार सुख इन्द्रियों का विषय नहीं है किन्तु इसका अनुभव शुद्ध बुद्धि से ही होता है ।

मानत अधिक लाभ नहि आना * सदा तत्व लयलीन सुजाना ॥
विचलित होय न यह गति पाये * सो कहुं घोर विपति हू आये ॥

सदा तत्व रूप आत्मा में स्थित ज्ञानी पुरुष आत्म सुख से

अधिक कोई दूसरा लाभ नहीं मानता। इस गति को पाकर योगी पुरुष को यदि बड़ी भारी आपत्ति भी आ जावे तो घबराता नहीं।

सो यह योग रहित त्रय तापा * सेवहि करि मन अचल अपापा॥

यह योग तीनों तापों से रहित है, इसका सेवन निष्पाप और एकाग्र मन से करना चाहिये।

सब संकल्प त्यागि सब कामा * मन ते बस करि इन्द्रिय ग्रामा॥
धृति धरि बुधिबल गहि मनवामा * सहजहि सहज करहि उपरामा॥
आत्महिं महँ निज मन ठहराई * चिन्तन सकल देय बिसराई॥

सब संकल्प और सब इच्छाओं को त्याग कर मन से इन्द्रियों को वश में लाकर धैर्य को धारण करके सुन्दर बुद्धि के द्वारा मन (जिस का स्वभाव ही उलटा विषयों में जाने का है) को वश में लावे और इस प्रकार धीरे धीरे विषयों से उपराम को प्राप्त हो। अपने मन को सदा आत्मा में स्थित करे और किसी तरह का चिन्तन न करे।

चंचल मन जहँ जहँ फिरहि, तहँ तहँ ते लौटाय।
पुनि पुनि रोपहि आत्म महँ, विषयन वृत्ति दुराय॥

जहाँ जहाँ पर यह चंचल मन जावे वहाँ वहाँ से लौटाकर बारम्बार इसको आत्मा में विषयों की वृत्ति हटाते हुए लगावे।

योगी शान्त रजोगुण हीना * ब्रह्म भूत तजि पाप मलीना॥
निरालम्ब आनन्द अगाधा * सहज तरहि सो भव निधि बाधा॥

योगीशान्त और रजोगुण की अधिकता से रहित मलीन पापों को त्याग कर ब्रह्म रूप होता है। वह योगीसंसार दुःख से छूट सहज ही में आलम्ब रहित अगाध सुख को प्राप्त होता है।

इमि मन युक्त निरन्तर करहीं * योगी किमपि पाप नहिं भरहीं॥
लहहिं सहज ते पूरण कामा * ब्रह्म रूप अनुभव सुख धामा॥

इस प्रकार मन को योग में लगाते हुए योगी लोग कभी पाप को प्राप्त नहीं होते। वे सहज ही में सर्व कामनाओं से तृप्त हुए महा सुख रूप ब्रह्म का अनुभव करते हैं।

योग युक्त ते पुरुष महाना * सम दर्शी सर्वत्र समाना॥
भूतन महं देखहिं निज रूपा * पुनि भूतन कहँ आत्म स्वरूपा॥

महा पुरुष योगी लोग समदर्शी और समानता से सब जगह वर्तने वाले भूतों में अपने रूप को देखते हैं। और अपने स्वरूप में भूतों को देखते हैं। अर्थात् सब को अपने में और अपने को सब में देखते हैं, इस प्रकार एक ही परब्रह्म को सवत्र व्यापक देखते हैं।

व्यापक लखत मोहि सब ठाहीं* पुनि सब कहँ देखत मुहि माहीं।
ताकहँ अलख न मैं कहुँ ताता * कबहुँ न मैं पुनि तिहि विसराता।

वह योगी मुझ को सब जगह व्यापक देखता है और सब को मुझ में रहा हुआ देखता है हे अर्जुन ! उसको मैं अदृष्ट कर्म नहीं होता और वह मुझ को भी कभी नहीं विसरता।

सब भूतन महँ व्यापक जानी * भजत जु एक ब्रह्म उर आनी।
सब व्यवहार करत हू रहई * मो महँ लीन सदा सो अहई।

जो सब प्राणियों में एक ब्रह्म को व्यापक जान कर भजन करता है वह सब व्यवहार करता हुआ भी सदा मुझ में ही लीन रहता है।

सब कहँ आत्म समान हीं, सदा निहारत जोय।
सुख दुख सम मन मानहीं, योगी उत्तम सोय॥

जो पुरुष सब को अपनी आत्मा के समान ही देखता है और सुख तथा दुःख को समान मानता है वही उत्तम योगी है।

अर्जुन कहा सुनहुँ भगवाना * समता योग जु आप बखाना॥
सो अति दुर्लभ लागत मोही * सहज नाश चंचलता ओही॥

अर्जुन कहने लगा कि हे भगवान् ! यह जो समता रूप योग आप कहते हैं वह तो मुझे बड़ा ही कठिन जान पड़ता है, क्योंकि मन की चंचलता सहज ही में उस समता का नाश कर देती है।

औरहु सुनिये श्याम सुजाना * चंचल मन अति ही बलवाना ॥
मन निग्रह अति दुश्कर कैसे * वेग विपुल वायू कर जैसे ॥

अर्जुन कहने लगा कि हे कृष्ण ! और भी सुनिये यह मन बड़ा चंचल और बलवान् है। इसको वश में करना ऐसा कठिन है जैसे कि बड़े भारी हवा के वेग को रोकना।

कह भगवान सत्य अह ताता * मन निग्रह अति दुरलभ बाता ॥
तदपि किये अभ्यास विरागा * मन वश होय चपलता त्यागा ॥

तब श्रीकृष्ण बोले कि हे तात ! यह सत्य है कि मन को वश करना बहुत कठिन है, तो भी अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन अपनी चंचलता को त्याग कर वश में होजाता है।

मन वश भे बिनु तात बहोरी * योग कठिन अह सम्मति मोरी।
पै करि यत्न जु मनवश लावहि * सुलभ योग तिहि किये उपावहि ॥

और हे तात ! मन के वश हुए बिना यह योग प्राप्त होना दुर्लभ है, यह मेरी सम्मति है। परन्तु जो यत्न करके मन को वश में ले आवे उसका उपाय करने से योग प्राप्त होना सहज है।

तब अरजुन पूछिउ कर जोरी * नाथ प्रश्न कछु करहुँ बहोरी ॥
श्री भगवान कहा हरषाई * तात पूछु जिमि शंक नशाई ॥

तब अर्जुन हाथ जोड़ कर पूछने लगा कि हे स्वामी ! मैं कुछ और भी प्रश्न करना चाहता हूँ। श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर बोले हे अर्जुन ! जो तुमको पूछना हो पूछो जिसमें तुम्हारी शंका मिट जावे।

जो अयती श्रद्धा सहित, योग करहि चल भाव।
साधन बिन सिद्धी लहे, कवन गती सो पाव ॥

अर्जुन ने पूछा कि हे माधव ! जो पुरुप अयती हो अर्थात् जिसने अपना मन वश न किया हो, ऐसा पुरुप यदि योग को चलायमान भाव से करे तो उसको सिद्धि न मिल कर कौनसी गति को वह प्राप्त होता है।

कहा विमूढ़ ब्रह्म पथ सोई * कर्म उपासन आश्रय खोई ॥
दुहुँ विधिभ्रष्ट सु पावहि नाशू * छिन्न भिन्न जिमि जलद अकाशू ॥

क्या ब्रह्म के मार्ग में मूढ़ वह पुरुष कर्म और उपासना दोनों से भ्रष्ट हुआ इस प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार कि आकाश में बादलों का समूह छिन्न भिन्न होकर नष्ट हो जाता है ?

यह संशय मम कृष्ण सुजाना * दूरि करहु समरथ भगवाना ॥
तुम बिनु आन न सम्भव कोई * शंका नाथ नशावहि जोई ॥

हे कृष्णजी ! यह मेरे मन में शंका है इसको दूर करने में आप समर्थ हैं कोई आप के बिना हे नाथ ! इस शंका का निवृत्ति करने को समर्थ नहीं ।

तब बोले प्रभु सहज सनेही * इहाँ उहाँ कहुँ नाश न तेही ॥
जो जन करहि कर्म शुभ ताता * सो कबहूँ दुरगति नहिं पाता ॥

तब भगवान् कहने लगे कि ऐसे पुरुप का न यहाँ इस लोक में न वहाँ अर्थात् परलोक में ही नाश होता है, हे प्रिय अर्जुन ! जो शुभ कर्मों के करने वाले पुरुप हैं, वे कभी भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होते।

पुण्य वान लोकन महँ जाई * रहि बहु काल तहाँ सुख पाई ॥
योग भ्रष्ट पुनि जनमत आई * कहुँ शुचि श्रीयुत गृह सुखदाई ॥

योग भ्रष्ट पुरुप मरने के बाद पुण्यवान् लोकों को जाता है। वहाँ बहुत समय तक रह कर दिव्य भोगों को भोगता है। फिर वह उन लोकों से लौट कर किसी पवित्र धनवान् सुख समृद्धिशाली घर में जन्म लेता है।

अथवा योगिन के गृह माहीं * जन्महि बहुरि सु संशय नाहीं ॥
जोअस जन्म मिलहि जगआई * दुर्लभतर मानहुँ तिहि भाई ॥

या वह योग भ्रष्ट पुरुष योगियों के घर में फिर जन्म पाता है, इसमें कोई संशय नहीं है, जो ऐसा जन्म संसार में मिले तो इससे दुर्लभतर और कुछ न समझना चाहिये ।

पाय बुद्धि संयोग तहँ, पूर्व जन्म अनुकूल ।
पुनि प्रयत्न सो सिद्धि हित, करहि तरन भव शूल ॥

इस प्रकार के जन्मों को प्राप्त होकर वह जीव पूर्व जन्म के अनुकूल ही बुद्धि को पाता है और फिर जितना कुछ पूर्व जन्म में कर लिया है उससे आगे सिद्धि के लिये प्रयत्न करता है, जिसमें संसार दुःख निवृत्त हो ।

पूर्व प्रभाव सु यहि पथ माईं * खिचत स्वयम् परवश की नाईं ॥
जो जिज्ञासु योग मन लावहि * सो फल अधिक वेद ते पावहि ॥

पूर्व जन्म के संस्कार के कारण वह पुरुष इस परमार्थ मार्ग में स्वयं परवश की तरह आकर्षित होता है। जो जिज्ञासु कर्म योग में मन लगाता है वह वेदाध्ययन से भी अधिक फल पाता है ।

करत प्रयत्न निरन्तर योगी * होय पूत तिमि पाप वियोगी ॥
जन्म अनेक लहइ सिधताई * पावहि पुनि गति परम सुहाई ॥

निरन्तर प्रयत्न करते हुए योगी पाप से छूट कर, पवित्र होकर अनेक जन्मों के बाद सिद्धि को पाते हैं उस बाद परम गति जो मोक्ष है उसको प्राप्त होते हैं ।

योगी बड़ तपसिन ते माना * पुनि ज्ञानिन ते अधिक बखाना ॥
कर्मिहु ते तिहि परम प्रमानी * योगी होहु तात अस जानी ॥

योगी को तपस्वियों से बड़ा माना गया है, योगी को (वाचक) ज्ञानियों से अधिक कहा गया है, योगी को कर्म काण्डियों से

उत्तम कहा गया है, ऐसा समझ कर हे अर्जुन! तुम योगी बनो।

जो योगी मो महँ मन लाई * मो कहँ भजत भक्ति अधिकाई॥
उत्तम सो सब योगिन माहीं * यह मत मोर नीक शक नाहीं॥

जो योगी मुझ में मन लगाकर श्रद्धा सहित मेरा भजन करता है, वह सब योगियों में श्रेष्ठ है यही मेरा उत्तम मत है, इसमें कोई शक नहीं है।

आतम संयम योग यह, मुक्ति हेतु सोपान।
श्रीकृष्ण भगवान ने, विस्तृत कीन्ह बखान॥

इस आतम संयम नामक योग का भगवान् ने विस्तार पूर्वक कहा यह योग मुक्ति के लिये सिड्ढी के समान है (आतम संयम का अर्थ मनोनिग्रह समझना चाहिये।)

इति षष्ठम अध्याय।
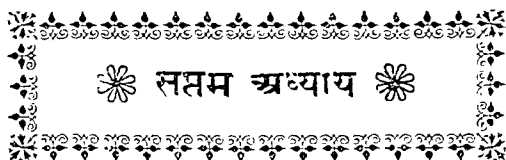
❀ सप्तम अध्याय ❀

भगवान् बोले

मोरे आश्रित योग करु, भजु मन निशि दिन मोय।
भलीभांति जिमि जानि है, तात सुनावहुँ सोय॥

मेरे आश्रित योग करते हुए रात दिन मन से मेरा भजन करो। ऐसा करते हुए जिस प्रकार तुम मुझको पूर्ण रूप से जानोगे वह भेद अब मैं तुमको बतलाता हूँ।

अब सब ज्ञान सहित विज्ञानू * तो कहं तात अशेष बखानू॥
जिहि जाने जग रहइ न शेषू * जानन कहँ कछु वस्तु विशेषू॥

अब वह सम्पूर्ण ज्ञान अनुभव सहित मैं तुझको बतलाऊँगा जिसको जान कर फिर कोई वस्तु संसार में जानने योग्य न रहेगी।

मनुज सहस्रन महँ कहुँ कोई * करत प्रयत्न सिद्धि हित जोई॥
यत्न शील सिद्धन महँ होई * जानत तत्व रूप मम कोई॥

हजारों आदमियों में कहीं कोई मनुष्य सिद्धि के लिये यत्न करता है, इस प्रकार यत्न करने वाले सिद्धों में कोई ही पुरुष मुझे तत्त्व रूप से जानता है।

भिन्न प्रकृति मम अष्ट प्रकारा * अपरा नाम मुनिन निरधारा॥
भूमि अनिल जल वायु अकाशा * अहंकार मन बुद्धि प्रकाशा॥

आठ प्रकार की मेरी अपरा प्रकृति कही गई हैं, जिनके नाम यह हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि और अहंकार।

परा प्रकृति मम जीव कहाई * जिहि बल जग धारण करिजाई ॥
सब भूतन कर उत्पति हेतू * प्रकृतिहि जानु पाण्डु कुल केतू ॥
मैं उत्पन्न कीन्ह जग सारा * तिमि करि प्रलय नशावन हारा ॥

मेरी परा प्रकृति जीव कहलाती है, जिस करके जगत् धारण किया जाता है। हे अर्जुन! सब प्राणियों की उत्पत्ति में हेतु प्रकृति को ही समझना चाहिये। मैं संसार को उत्पन्न करने वाला तथा प्रलय करने वाला हूँ। भाव यह है कि प्रकृति जगत् का उपादान कारण है जैसे घड़े का उपादान कारण मिट्टी है और मैं निमित्त कारण हूँ जैसे घड़े का बनाने वाला कुम्हार घड़े का निमित्त कारण है। यों तो प्रकृति परमात्मा से भिन्न सत्ता रखती ही नहीं है इसलिये परमात्मा ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण सिद्ध है तो भी समझाने के लिये ऐसा कहा गया है।

मोसन परतर आन कछु, नाहिन वस्तु प्रमान।
मणि गण पोये सूत्र महँ, तिमि जग मो महँ जान॥

मुझ से परे कोई भी वस्तु नहीं है, जिस तरह धागे में मणियों के समूह पोये रहते हैं, इसी तरह यह सब जगत् मुझ में पोया हुआ है अर्थात् यह जगत् मेरे ही आधार पर है।

मोर रूप जल महँ रस हरहु * मैंहि प्रभा शशि सूरज केरहु ॥
प्रणव रूप वेदन महँ मेरा * मैं ही शब्द नभमण्डल केरा ॥

जल में मैं रस हूँ, चाँद और सूरज में जो प्रभा है वह मैं हूँ, वेदों में मैं प्रणव रूप हूँ, आकाश में शब्द मेरा ही रूप है।

मैं पौरुष पुरुषन महँ भाई * पृथिवी महँ तिमि गंध सुहाई ॥
मैं जीवन सब भूतन केरा * तेज रूप पावक महँ मेरा ॥

मैं पुरुषों में पौरुष रूप हूँ, पृथ्वी में मैं गन्ध रूप हूं, प्राणियों में जीवन रूप हूँ, और अग्नि में तेज रूप हूँ।

मैं कारण भूतन कर भाई * विद्वानन कर बुधि कुशलाई ॥
तेजस्विन महँ तेज प्रतापा * तपसिन महँ मैं तप हुइ व्यापा ॥

सब भूतों का कारण मैं ही हूँ विद्वानों की बुद्धि मैं हूँ। तेजस्वियों में तेज मैं हूँ, तपस्वियों में तप मैं हूँ।

बलवानन कर सुन्दर गाता * काम राग तजि मैं बल ताता ॥
मैं पुनि काम धर्म अनुकूला * भूतन कहँ सुन्दर सुख मूला ॥

बलवानों के सुन्दर शरीरों में जो काम और राग से रहित बल है वह मैं हूँ। प्राणियों को सुन्दर सुख का देने वाला जो धर्म के अनुसार काम है वह मैं हूँ।

सात्विक राजस तामस भावा * इनहूँ प्रवृति मोहि सन पावा ॥
यह सब भाव रहहिं मुहिमाहीं * तिन महँ किमपि रहत मैं नाहीं ॥

सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के भाव सब मुझ से ही प्रवृति पाते हैं। यह सब भाव मेरे आश्रित रहते हैं किन्तु मैं इन भावों के आश्रित बिलकुल नहीं रहता।

तीन गुणन मोहित भयउ, तात सकल संसार।
मूढ़ न मो कहँ जानहीं, गुणातीत अविकार ॥

हे प्रिय अर्जुन! यह सारा संसार तीन गुणों से मोह को प्राप्त हो रहा है। मूढ़ता अर्थात् अज्ञान के कारण सांसारिक लोग मुझको विकार रहित और गुणों से परे नहीं जानते।

दैवी गुण युत यह मम माया * दुस्तर किनहुँ पार नहिं पाया ॥
पै जे गहहिं शरण मम आई * तरहिं सहज माया दुखदाई ॥

यह मेरी त्रिगुण युक्त दैवी माया तरने के लिए अत्यन्त कठिन है इसका पार किसी ने भी नहीं पाया है। किन्तु जो लोग मेरी

शरण को प्राप्त होते हैं वे इस दुखदाई माया को सहज तर जाते हैं।

पापी मूढ़ अधम जे प्रानी * असुर भाव आश्रित अज्ञानी ॥
ते मम शरण कबहुँ नहिं आवहिं * माया तिन कर ज्ञान नशावहिं ॥

जो पापी मूर्ख और नीच पुरुष है और आसुरी भावों को ग्रहण किये हुए हैं; वे लोग मेरी शरण में कभी नहीं आते और माया उनके ज्ञान को नष्ट कर देती है।

पुण्यवान जन चारि प्रकारा * अर्जुन भजत मोहि संसारा ॥
आरत अरथी अरु जिज्ञासू * पुनि ज्ञानी मन निरमल जासू ॥

अर्जुन ! चार प्रकार के पुण्यवान् लोग संसार में मेरा भजन करते हैं एक दुःखी लोग दूसरे जिनका कोई अर्थ है, तीसरे जो मुझे प्राप्त होने की इच्छा रखते हैं, चौथे जो ज्ञानी लोग हैं।

सब महँ ज्ञानी श्रेष्ठ बखाना * नित्य युक्त सो भक्ति प्रधाना ॥
ज्ञानी कहँ मैं प्राण अधारा * तिमि ज्ञानी मुहि अधिक पियारा ॥

चारों प्रकार के मेरे भक्तों में ज्ञानी सब से उत्तम है क्योंकि वह सदा योग युक्त और भक्ति की प्रधानता वाला है। ज्ञानी को मैं प्राण आधार हूँ और इसी प्रकार ज्ञानी भी मुझे अत्यन्त प्यारा है।

चारिहु उत्तम परम सुजाना * ज्ञानिहिं आत्म रूप मैं माना ॥
सो मनस्ववश राखिभजमोही * सर्वोत्तम गति सुलभ सु ओही ॥

यह चारों प्रकार के भक्त अच्छे हैं किन्तु ज्ञानी को तो मैं आत्मरूप ही मानता हूँ, क्योंकि वह मन को अपने वश में करके मेरा भजन करता है, इसके लिये सब से उत्तम गति अर्थात मोक्ष सुलभ ही है।

बहु जन्मन के अन्त महँ, ज्ञान वान मुहि पाय।
सो कहँ सर्वस मानहीं, सो दुर्लभ मुनिराय ॥

वहुत जन्मों के वाद ज्ञानी मुझे प्राप्त होकर मुझे ही अपना सर्वस्व मानता है ऐसा मुनीश्वर संसार में दुर्लभ है।

काम विवश नर ज्ञान दुराई * भजहिं अन्य देवन कहँ जाई ॥
निज स्वभाववशआपहि फिरहीं * तिन नियमन कहँ ते अनुसरहीं॥

कामना के वश में होकर मनुष्य को वोध नहीं रहता है और दूसरे देवताओं को जाकर यह मनुष्य भजता है। इस प्रकार अपने स्वभाव में आपही फँसकर उन (वन्धन में डालने वाले) नियमों का अनुसरण करता है।

चहत उपासन जो जिहि देवा * श्रद्धा सहित करत बहु सेवा ॥
ताहि देव महँ तिहि नर केरा * अचल प्रेम मैं करहुँ घनेरा ॥

जो पुरुष जिस देवता की उपासना करता है, और श्रद्धा सहित उसकी वहुत सेवा करता है, उसी देवता में मैं उस मनुष्य के प्रेम को दृढ़ कर देता हूँ।

मम प्रभाव श्रद्धा अधिकाई * पुनि तिहि देव उपासत जाई ॥
तव सो पुरुष मनोरथ पावहि * सो सव जानहुँ मोर प्रभावहि ॥

मेरे प्रभाव से उसकी श्रद्धा वढ़ जाती है और वह मनुष्य उस देवता की भाव सहित उपासना करता है। तव वह मनुष्य अपनी इच्छा को पाता है, यह सव मेरा ही प्रभाव है।

अन्त वन्त फल पावत तेई * अल्प वुद्धि नर देवन सेई ॥
मो कहँ मिलहिं भक्त मम आई * देव भक्त देवन पहँ जाई ॥

वे थोड़ी वुद्धि वाले लोग देवताओं को पूजकर नाशवान् फल को पाते हैं। मेरे भक्त मुझे मिलते हैं, और देवताओं के भक्त देवताओं को मिलते हैं।

व्यक्ति रूप मुहि मानत मूढ़ा * जानत नहिं परतत्व निगूढ़ा ॥
मैं अव्यक्त अचल अविनाशी * सर्वोत्तम विभु स्वयम् प्रकाशी ॥

मूर्ख पुरुष मुझे एक व्यक्ति रूप मानते हैं, मेरे परम तत्त्व गहन भाव को वे नहीं जानते कि मैं अप्रकट हूँ, अचल हूँ, अविनाशी हूँ, सब से उत्तम हूँ, व्यापक और स्वप्रकाश रूप हूँ।

माया योग प्रताप बल, प्रकट न मोर स्वरूप।
मूढ़ भेद नहिं जानहीं, मैं अज अव्यय रूप॥

योग माया के प्रताप के बल से मेरा स्वरूप प्रकट नहीं है, इस भेद को मूर्ख लोग नहीं जानते कि मैं अजन्मा और अनन्त रूप हूँ।

भयउ होय अरु होनहि हारा * भूतन कर जहँ लगि विस्तारा॥
जानत मैं सब ही कछु सोई * पै नहिं मोकहँ जानत कोई॥

जो कुछ अब तक भूतों का विस्तार हुआ है, हो रहा है और होगा मैं उस सबको जानता हूँ किन्तु मुझे कोई भी नहीं जानता।

जन्महिं ते भूतन कहँ भाई * इच्छा द्वेष सतावहिं आई॥
उपजहिं सुख दुख द्वन्द्व बहोरी * मोहइ भूतन की मति भोरी॥

हे भाई! प्राणियों को जन्म से ही इच्छा द्वेष आकर के सताते हैं और सुख दुःख देने वाले द्वन्द्व पैदा होते हैं जिन से प्राणियों की सरल बुद्धि मोह को प्राप्त हो जाती है।

पुण्य कर्म जे करहिं सयाने * जिन निज पातक सकल नशाने।
ते तजि द्वन्द्व मोह दुख दाई * भजहिं मोहि दृढ़ निश्चय लाई॥

जो चतुर पुरुष पुण्य कर्मों को करते हैं और जिन्होंने अपने सब पापों का नाश किया है, वे द्वन्द्व और दुःख देने वाले मोह को त्याग कर मुझको दृढ़ निश्चय के साथ भजते हैं।

जरा मरण ते छूटन हेतू * करहिं यत्न मम भक्ति समेतू॥
जानहिं मुनि वर अस कोउ एका * कर्म ब्रह्म अध्यात्म विवेका॥
साधिभूत अधिदैव अधियज्ञा * जानहिं मो कहँ परम सु विज्ञा॥
सो पुनि आइहु काल पयाना * चित्त समाहित मोकहँ जाना॥

बुढ़ापा मृत्यु आदि दुःखों से छूटने के लिये मेरी भक्ति सहित यत्न करते हैं। ऐसा श्रेष्ठ मुनि कोई ही होगा जो कर्म, ब्रह्म, और अध्यात्म के विवेक को समझता हो। और जो मुझको अधिभूत. अधिदैव. और अधियज्ञ सहित जानता है वह परम विद्वान् है। वह पुरुष मृत्यु काल में भी सावधान चित्त से मुझको जानता है। (भाव यह कि मुझे जानता हुआ मुझ में ही लीन होता है)

ज्ञान योग अति गुह्य तम, कीन्हिउ कृष्ण बखान।
जे जन करहिं विचार उर, नाशहिं भ्रम अज्ञान॥

यह ज्ञान योग अत्यन्त गुप्त श्रीकृष्ण भगवान् ने कथन किया जो लोग इसका विचार हृदय में करेंगे. उनका भ्रम और अज्ञान निवृत्त हो जायगा।

इति सप्तम अध्याय।
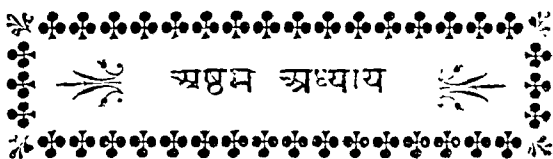
अर्जुन उवाच

कहा ब्रह्म अध्यात्म कह, कहा कर्म संसार ।
कह अधिभूत अधि दैवहू, कहिये कृष्ण मुरार ॥

अर्जुन पूछने लगा कि हे कृष्ण ! ब्रह्म क्या है, अध्यात्म क्या है, कर्म क्या है अधिभूत क्या है, और अधिदैव क्या है, यह आप मुझको बताइये ।

कैसन पुनि अधियज्ञ बखाना ॥ कहहु देह महँ कौन सु माना ॥
मनहिं स्ववश रखि किमि सो जाना ॥ अन्त समय तुम कहँ भगवाना ॥

और अधियज्ञ किसको कहते हैं इस शरीर में अधियज्ञ कौन है ? और मन को अपने वश में रखकर हे भगवान ! वह पुरुष तुमको कैसे जानता है ।

कह भगवान सुनहु सो ताता ॥ अविनाशी तत ब्रह्म कहाता ॥
पुनि स्वभाव अध्यात्म बखाना ॥ कर्म कहावहिं जप तप दाना ॥
उपजहिं बढ़हिं भूत जग माहीं ॥ कर्म प्रभाव सुनहुँ शक नाहीं ॥

भगवान कहने लगे कि हे तात ! अविनाशी तत्त्व को ब्रह्म कहते हैं, स्वभाव को अध्यात्म कहते हैं, जप तप दान इत्यादि को कर्म कहते हैं, कर्म ही से संसार में भूतों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

तात अनित्य पदारथ जेते ॥ सब अधिभूत कहावत तेते ॥
हिरण्यगर्भ जो पुरुष महाना ॥ सोई पुनि अधिदैव बखाना ॥

जो अनित्य अर्थात् नाश होने वाले पदार्थ हैं, वह अधिभूत कहलाते हैं। महान् पुरुष जो हिरण्यगर्भ हैं वही अधिदेव कहलाता है।

मैं प्रेरक कर्मन फल दाता * देहन विच अधियज्ञ कहाता ॥
अन्त त्यागि तन करत प्रयाना * मम सुमिरन जिनके उर आना ॥
संशय रहित मिलहिं जे मोही * उत्तम ज्ञान सुनावहुँ तोही ॥

मैं कर्मों का प्रेरक और फल का देने वाला शरीर में टिका हुआ अधियज्ञ कहलाता हूँ। अन्त समय जो मेरा सुमिरन करते हुए तन त्यागता है, वह अवश्य मुझको आकर मिलता है यह उत्तम ज्ञान मैं तुझे बतलाता हूँ।

अन्त समय सुमिरन करहि, मन महँ जो कछु भाव।
तिनहीं भावाश्रित भयउ, वस्तु सोइ पुनि पाव ॥

मरण काल में जिस-जिस भाव को यह जीव स्मरण करता है, उन्हीं भावों को आश्रित हुआ उन्हीं वस्तुओं को यह प्राप्त होता है।

याहित सुमिरहु मुहि सब काला * करहु तात पुनि युद्ध विशाला ॥
जो राखहु मन बुधि मुहि पाहीं * मोहिमिलहु कछु संशय नाहीं ॥

हे तात ! इसलिये सब काल में मेरा स्मरण करना चाहिये और तुम्हें इस विशाल युद्ध को करना चाहिये। जो सब काल में मन और बुद्धि को मुझ में लगाये रहोगे तो मुझको ही प्राप्त होगे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मन इकाग्र करि योगाभ्यासा * जोइ निरन्तर मोहि उपासा ॥
परम पुरुष परमेश कहाई * दिव्य रूप कहँ मिलइ सु जाई ॥

मन को एकाग्र करके जो योगाभ्यास करते हुऐ निरन्तर उपासना करता है, वह परम पुरुष परमात्मा के दिव्य स्वरूप को प्राप्त होता है।

सो सर्वज्ञ अनादि नियन्ता * सूक्ष्महु ते सूक्ष्म भगवन्ता ॥
धारत सबहि अचिन्त्य स्वरूपा * तम अतीत पुनि आदित रूपा ॥

वह परम पुरुष सब कुछ जानने वाला है, सब सृष्टि को नियम में रखने वाला है, वह भगवान् सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है वह सबको धारण करने वाला है, उसका स्वरूप चिन्तन करने के योग्य नहीं है, वह अन्धकार से परे ज्योति स्वरूप है।

करत प्रयाण न मनहिं डुलावा * भक्ती सहित योग बल पावा ॥
भ्रुवन मध्य प्राणन कहँ लाई * सो नर दिव्य पुरुष पहँ जाई ॥

मरण काल में मनको इधर-उधर न डुलाते हुए भक्ति के साथ योग बल को पाकर दोनों भौहों के बीच में प्राणों को ठहराकर जो ध्यान करता है, वह पुरुष उस दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है।

अक्षर कहत वेद वित जाही * प्रविशहिं यती विरत जिहि माहीं ॥
जिहि लगि ब्रह्मचर्य व्रत लागे * पद संक्षेप कहहुँ सो आगे ॥

जिसको वेद के जानने वाले अविनाशी कहते हैं और वीत-राग यती लोग जिसमें प्रवेश करते हैं, और जिसके लिये ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण करते हैं, वह पद संक्षेप मे आगे कहा जाता है।

सब द्वारन कहँ रोकि कै, निश्चल मन उर लाय।
प्राणन मस्तक धारही, योगाभ्यास समाय ॥

सब द्वार जो इन्द्रियां हैं उनको उनके विषयों से रोक कर मन को हृदय में निश्चल करके और प्राणों को मस्तक में स्थिर करके योगाभ्यास का आचरण करे।

ओम इति अक्षर ब्रह्म उचारत * पुनि मम सुमिरन मन महँ धारत।
त्यागि शरीर चलत इमि जोई * परम गती नर पावत सोई ॥

ओम् इस ब्रह्मअक्षर का उच्चारण करते हुए और मेरा मन से स्मरण करते हुए जो शरीर को त्यागता है, वही योगी पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

अनन्य चित्त निरन्तर मोही * सुमिरत नित्य तात जन जोही।
भक्ति विशेष मोहि अपनाई * मो कहँ मिलइ सहज सो आई॥

अनन्य भाव से जो पुरुष सदा निरन्तर स्मरण करता है, हे तात! वह विशेष भक्ति के द्वारा मुझे अपना कर सहज ही में मुझे आ मिलता है।

जन्म अनित सब दुखकर मूला * जब लगि है न नशै भव शूला।
सिद्ध महा मुनि मो कहँ पाई * लहहिं परम गति जन्म दुराई॥

जन्म अनित्य है और सब दुखों का कारण है, जब तक जन्म होता है तब तक सांसारिक दुःखों का नाश नहीं हो सकता। सिद्ध मुनीश्वर लोग मुझको पाकर परमगति जो मोक्ष है उसको जन्म त्याग करके प्राप्त होते हैं।

ब्रह्म लोक लों भोग अनेका * सब ते पुनरागम नहिं टेका।
पै मुहि पाय अमित सुख होई * पुनरजन्म नहिं पावत कोई॥

ब्रह्मलोक तक जितने भोगों के लोक हैं उन सब से लौट कर आना होता है वहाँ सदा कोई नहीं ठहर सकता। किन्तु मुझे प्राप्त होने से अत्यन्त सुख होता है और फिर जन्म मृत्यु को कोई प्राप्त नहीं होता।

सहस चतुरयुग इक दिन ताता * ब्रह्मा कर इतनिहिं पुनि राता॥
जे यह भेद याथारथ जानहिं * ते दिन राति ठीक पहिचानहिं॥

ब्रह्मा का दिन एक हजार चतुर युगों के बराबर होता है, और इतनी ही ब्रह्मा की रात होती है। जो लोग इस भेद को जानते हैं, वे रात और दिन को ठीक ठीक जानते हैं।

व्यक्त होत अव्यक्त सन, दिन महँ व्यक्ति स्वरूप।
निशा भये पुनि होत लय, तिहि अव्यक्त अनूप॥

ब्रह्मा का जब दिन होता है तो अव्यक्त जो प्रकृति है उसमें से व्यक्त रूप जो संसार है वह उपत्न होता है फिर जब ब्रह्मा की रात होती है तब उसी अप्रकट रूप ब्रह्म माया में जगत् लय हो जाता है। (प्रकट को व्यक्त और अप्रकट को अव्यक्त कहते हैं यह शब्दार्थ है।)

पुनि पुनि जन्म सु भूत नशाईं * निशि आये परवश की नाईं॥
होत दिवस प्रारम्भ बहोरी * भूतन कर उत्पति नहिं थोरी॥

भूत प्राणी बार बार जन्म ले लेकर ब्रह्मा की रात होने पर परवश नाश को पाते हैं और दिन के शुरू होने पर फिर बहुत बड़ी भूतों की उत्पत्ति होती है।

अव्यक्तहु ते परम बखाना * अन्य भाव अव्यक्त पुराना॥
सब भूतन के नाश भएहू * सो नहिं नसत गूढ़ मत एहू॥

अव्यक्त जो प्रकृति है उससे भी सूक्ष्म एक और भी सनातन अव्यक्त भाव अर्थात् ब्रह्म है सब भूतों का नाश हो चुकने पर भी उस ब्रह्म तत्त्व का नाश नहीं होता यह गहरा भेद है, मतलब यह है कि अव्यक्त प्रकृति तो संसार की उत्पत्ति और लय होने में विकारवान है किन्तु ब्रह्म निर्विकारी और अविनाशी है।

अव्यक्तहि अक्षर मुनि मानहिं * ताही कहँ गति परम बखानहिं॥
जहाँ जाय पुनि लौटत नाहीं * सो मम धाम समुझि मन माहीं॥

इसी अप्रकट रूप ब्रह्म को मुनि लोग अविनाशी कहते हैं और इसीको परमगति कहते हैं। जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता, उसीको मेरा धाम समझो अर्थात् ब्रह्म साक्षात्कार ही परमगति का पाना है जिसे पाकर फिर जन्म नहीं होता।

जो व्यापक सर्वत्र समाना * जिहि अन्तर जड़ जीव जहाँना ॥
सो पर पुरुष मिलहि पुनि ताही * भक्ति अनन्य अमित उर जाही ॥

जो सब जगह एकसा ही मौजूद है, और जिसके अन्दर जड़ चैतन्य रूप सब सृष्टि है, वह परम पुरुष परमात्मा उसीको मिलता है जिसके हृदय में भारी अनन्य भक्ति है।

योगी त्यागि शरीर सिधावहिं * कछु आवहिं कछु बहुरि न आवहिं॥
अब सो काल कहहुँ तुहि पाहीं * कब लौटत कब लौटत नाहीं ॥

कोई योगी लोग शरीर त्यागने पर पुनर्जन्म को पाकर लौटते हैं, और कोई योगी लोग मुक्त होकर कभी नहीं लौटते, इस लिये मैं तुझे वह समय बताता हूँ कि किस काल में शरीर त्यागने पर लौटना होता है और किस काल में नहीं।

अर्जुन मन एकाग्र करि, सुनहु अनूपम भेद ।
योगी जन जिमि पावहीं, भव भय कर उच्छेद ॥

हे अर्जुन! मन एकाग्र करके इस अनोखे भेद को सुनो कि योगी लोग जिस प्रकार से संसार रूपी दुःख से छूटते हैं।

अनिल प्रकाश दिवस उजियारी * पुनि उत्तर षट मास तमारी ॥
इन महँ मृतक ब्रह्म वित् जेई * ब्रह्म लोक कँह पावत तेई ॥

जिस समय बाहर में अग्नि हो, प्रकाश हो, दिन हो, वा उजेला-पक्ष हो, और उत्तरायण के छः महीने हों ऐसे समय में मृतक योगी ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।

रजनी धूम तथा अँधियारी * षट मासा रवि दक्षिण चारी ॥
मृतक होय इह काल जु योगी * पुनि लौटत शशि लोकहि भोगी॥

पर जो योगी रात्रि, धूआँ वा अन्धेरेपक्ष में अथवा दक्षिणायण के छः महीनों में शरीर त्यागता है, वह चन्द्रलोक तक जाकर और वहाँ के भोगों को भोग कर फिर लौट आता है।

शुक्ल कृष्ण दुहुँ, गती वखानी * सो सब काल सवहि ने मानी ॥
होंय विमुक्त शुक्ल गति गामी * जन्महिं वहुरि कृष्ण गति वामी ॥

शुक्ल और कृष्ण दो गति कही हैं, उनको सब ने सर्वदा ऐसा ही माना है। शुक्ल गति से जाने वाले मुक्त हो जाते हैं, और उलटी जो कृष्ण गति है उसको पाने वाले योगी लोग लौट कर फिर जन्म पाते हैं।

इन मार्गन कहँ जे भल जानहिं * ते योगी मन मोह न आनहिं ॥
अस जिय जानि तात सब काला * धारहु निरमल-योग विशाला ॥

जो लोग इन मार्गों को अच्छी तरह जानते हैं, वे योगी अपने मन में मोह को नहीं प्राप्त होते। ऐसा समझ कर हे प्यारे! सब काल में इस महान और पवित्र योग से युक्त रहो।

वेद यज्ञ तप दान विशेषा * सबकर फल जो कछु निरदेशा ॥
सबसन अधिक अहइ यह ज्ञाना * योगी पहुँचत आदि ठिकाना ॥

सारे वेद पठन, यज्ञ, तप, और दान का जो कुछ विशेष फल कहा गया है, उस सब फल से ज्यादा फल वाले इस ज्ञान को पाकर योगी लोग आद्यस्थान को प्राप्त होते हैं।

कीन्हिउँ योग वखान यह, अक्षर ब्रह्म सुनाम।
जे जन धारहिं भक्ति युत, लहहिं सहज ममधाम ॥

यह अक्षर ब्रह्म नाम का योग मैंने कहा जो लोग इस योग को भक्ति सहित धारण करेंगे वह सहज ही में मेरे धाम को पावेंगे।

इति अष्टम अध्याय।

नवम अध्याय

भगवान् उवाच

शास्त्र ज्ञान अनुभव सहित, यह पुनि गुह्य विशेष ।
कहहुँ अनिन्दक जानि तुहि, छूटहिं जिमि भव क्लेश ।।

यह शास्त्र का ज्ञान अनुभव के साथ तुझको अनिन्दक जान कर कहता हूँ, जिसमें तेरा संसार रूप दुख निवृत्त हो, यह ज्ञान अत्यन्त गुप्त है ।

गुह्य ज्ञान सर्वोपरि माना * तिमि अतिश्रेष्ठ पवित्र महाना ॥
फल प्रत्यक्ष अमित सुखदाई * धर्मस्वरूप न किमपि नशाई ॥

इस गुप्त रखने योग्य ज्ञान को सब ज्ञानों से ऊँचा माना गया है, यह अत्यन्त उत्तम और पवित्र है । इसका फल प्रत्यक्ष है और बहुत सुख देने वाला है यह ज्ञान परम धार्मिक और कभी नाश होने वाला नहीं है ।

श्रद्धा रहित पुरुष अति भर्मा * मानत नहिं यह उत्तम धर्मा ।।
मोहि न पाय भ्रमहि संसारा * मृत्यु ग्रसहि तिहि वारम्बारा ॥

श्रद्धा रहित पुरुष इस उत्तम धर्म को न मान कर भ्रमित हुआ मुझको नहीं पाता । और संसार में वारवार मृत्यु का प्राप्त होता है ।

मैं अव्यक्त स्वरूप अपारा * व्यापित कीन्ह सकल संसारा ॥
मो महँ निवसित भूत अशेषा * पै तिन महँ नहि मैं लवलेशा ॥

मैंने अपने अप्रकट और अपार स्वरूप से सब संसार को व्याप्त कर रक्खा है। सब प्राणी मुझ में रहे हुए हैं, मैं उनके आश्रित बिलकुल नहीं रहता।

पुनि नहिं मोमहँ भूत विचारे * लखहु योग ऐश्वर्य हमारे॥
भूतन महँ मम आतम रहई * तिन कहँ धारि सु पालन करई॥

फिर भी सुनो कि भूत भी बिचारे मुझ में नहीं हैं, यह हमारे योग का ऐश्वर्य देखो। भूतों में रहा हुआ हमारा आत्मा इन भूतों का धारण करके पालन पोषण करता है।

जिमि रहि पवन खमण्डल माहीं * विचरत फिरत सदा सब ठाहीं॥
इमि सचराचर सृष्टि प्रसारा * जानहुँ मम अन्तर इह सारा॥

जिस प्रकार हवा आकाश में रह कर सब जगह विचरती फिरती है, इसी तरह इस सारी जड़ चैतन्य सृष्टि को मेरे ही अन्दर समझो।

भूत सकल मम प्रकृति लय, होहिं कल्प के छोर।
तिनहिं कल्प की आदि महँ, सिरजन करहुँ बहोर॥

सारे भूत प्राणी कल्प के अन्त में मेरी प्रकृति में लय हो जाते हैं, और कल्प के आरम्भ में फिर मैं उन सब को उत्पन्न करता हूँ।

निज माया बल बारम्बारा * सिरजहुँ भूत जगत विस्तारा॥
भूत सकल वश माया मेरी * मैं स्वामी निमि सो मम चेरी॥

मैं अपनी माया के बल से बारबार सब जगत्‌रूपी विस्तार को उत्पन्न करता हूँ। सारे प्राणीगण मेरी माया के वश में हैं, वह माया मेरी चेरी है, मैं माया का स्वामी हूँ।

ते सब कर्म न बाँधहिं मोही * कारण प्रकट सुनावहुँ तोही॥
उदासीन बन मैं आसीना * तिन कर्मन महँ संग विहीना॥

वे सब कर्म मुझको बन्धन नहीं करते, इसका कारण यह है कि मैं उदासीन के समान उन कर्मों को प्रीति रहित होकर करता हूँ।

मम अधिकार सु माया मेरी * रचहि चराचर सृष्टि घनेरी ॥
अर्जुन जानहुँ कारण एही * जगत होत परिवर्त्तित जेही ॥

वह माया मेरे आधीन रह कर सब चराचर जगत् को उत्पन्न करती है इसी कारण जगत् में परिवर्त्तन होता है।

सखा मोहि मानुष तनु हेरी * मूरख करहिं अवज्ञा मेरी ॥
परम भाव नहिं ते पहिचाना * भूत महेश्वर मैं भगवाना ॥

हे अर्जुन! मूर्ख पुरुष मुझे मनुष्य शरीरधारी जान कर मेरा अपमान करते हैं, वे लोग मेरे उत्तम भाव को नहीं जानते कि मैं साक्षात् भगवान् और भूतों का स्वामी हूँ।

आशा ज्ञान कर्म तिन केरे * सब कछु विफल मूढ़ता घेरे ॥
तिन कर सुनहुँ स्वभाव बहोरी * असुर राक्षसी वृत्ति न थोरी ॥

उन लोगों को अज्ञान ने घेर रक्खा है, और उनकी आशा ज्ञान और कर्म सब विफल होते हैं। फिर उनका स्वभाव कैसा होता है—असुर और राक्षसों के समान।

महा पुरुष तौ जानहीं, मोकहँ रहित विकार।
एक भक्ति दृढ़ भजहिं ते दैवी सम्पति धार ॥

महान् लोग तो मुझको विकार रहित जान कर एक दृढ़ भक्ति से मेरा भजन करते हैं, और वे दैवी सम्पति को धारण करते हैं।

करहिं सदा कीर्तन मम भारी * जे जन यती अटल व्रतधारी ॥
नमस्कार मुहि करहिं सप्रेमा * रहि नित युक्त उपासहिं नेमा ॥

जो लोग यती और दृढ़ व्रतधारी होते हैं, वे सदा मेरा बहुत कुछ कीर्तन किया करते हैं। वे लोग सदा योग से युक्त होकर नियम से मेरी उपासना करते हैं और प्रेम से मुझे नमस्कार करते हैं।

ज्ञान यज्ञ सन अपर वहोरी * करहिं होम मम मुख चहुँ ओरी ॥
लोग उपासन करहिं हमारा * सो शृणुतात सु विविध प्रकारा ॥

दूसरे लोग ज्ञान यज्ञ से यज्ञ को करते हैं और मेरा मुख चारों ओर है,भाव यह कि मैं सब ओर से और सब प्रकार होम के द्रव्य को ग्रहण करता हूँ। लोग नाना प्रकार से हमारा पूजन करते हैं, उनके प्रकार कहते हैं।

होम स्वधा क्रतु ओषधि नाना * जानहुँ सब मम रूप सुजाना ॥
मैं घृत मन्त्र अनिल हुत भाई * सब कछु जानहुँ मम प्रभुताई ॥

मैं यज्ञ रूप हूँ स्वधा नामक पितरों का दिया हुआ अन्न मैं हूँ, क्रतु अर्थात नैवेद्य मैं हूँ नाना प्रकार की ओषधियाँ जो यज्ञ के काम आती हैं वह मैं हूँ हे चतुर अर्जुन! यह सब मेरा ही रूप है। घृत, अन्न, अग्नि और होम के लिये जो द्रव्य होता है वह मैं ही हूँ, इस सबको मेरी प्रभुताई समझो।

मैं पितु मातु पितामह ताता * सर्व जगत कर अहउँ विधाता ॥
मैं पुनि प्रणव सु ऋक यजु सामा * वेद्य परम पावन सुख धामा ॥

मैं जगत का पिता माता और परदादा हूँ और सब जगत का धारण करने वाला हूँ, ओंकार और ऋग्वेद, युजुर्वेद, और साम-वेद मैं हूँ, मैं आनन्दस्वरूप परम पवित्र और जानने योग्य हूँ।

मैं तिमि प्रभव प्रलय अरु थाना * अव्यय बीज स्वरूप निधाना ॥
गति प्रभु भर्ता साक्षि स्वरूपं * शरण निवास सुमित्र अनूपं ॥

मैं जगत की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने वाला हूँ, मैं अवि-नाशी कारण रूप, खजाना हूँ, मैं गति, प्रभु, पालन करने वाला, साक्षी रूप हूँ, मैं ही मित्र आश्रय और निवास स्थान हूँ।

जल रोकहुँ वर्षावहुँ, तपहुँ दिनेश स्वरूप ।
अमृत मैं तिमि मृत्यु हूँ, मैं पुनि सदसत रूप ॥

मैं जल को रोकने और वर्षाने वाला हूँ, मैं सूर्य रूप से तपने वाला हूँ, मैं अमृत, हूँ, और मैं मृत्यु हूँ और जो कुछ सत् और असत् रूप है वह मैं ही हूँ।

तीन वेद कर जानन हारे * सोम पियहिं निज पाप निवारे॥
याचहिं स्वर्ग यज्ञ करि नाना * ते पहुँचहिं सुरलोक महाना॥

तीनों वेदों के जानने वाले, सोम वल्ली का पान करने वाले और पापों को नाश करने वाले लोग नाना प्रकार के यज्ञों को कर के स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा करते हैं, वे स्वर्ग को प्राप्त होते हैं।

पुण्य प्रभाव जाइ तहँ लोगू* सुर सम भोगि अलौकिक भोगू॥
जन्महिं मृत्यु लोक पुनि आई * जबहीं तिन कर पुण्य नशाई॥

स्वर्ग में पुण्य के प्रभाव से जाकर के लोग देवताओं के समान भोगों को भोगते हैं, फिर जब उनके पुण्य क्षय हो चुकते हैं तो मृत्यु लोक में फिर आकर जन्म पाते हैं।

इमि त्रय वेद कर्म जे लागहिं * निज इच्छा गमनागम पावहिं॥

इस प्रकार से तीनों वेदों में जो कर्म कहे हुए हैं उनको करते हुए वे लोग अपनी इच्छा से आवागमन को पाते हैं।

जे जन सदा ध्यान मम धरहीं * इक निष्ठागहि सुमिरन करहीं॥
योग क्षेम तिन भक्तन केरे * पूरण होंय अनुग्रह मेरे॥

जो लोग सदा मेरा ध्यान करते हैं, और एक निष्ठा से मेरा सुमरिन करते हैं, उन भक्तों की परवरिश मेरी कृपा से पूर्ण होती है। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग, और प्राप्त वस्तु की रक्षा का नाम क्षेम है।

श्रद्धा सहित जु देवन आना * पूजन करहिं सहित बलिदाना॥
करहिं यदपि तिहु पूजन मेरा* विधि विहीन पूजन तिन केरा॥

पर जो श्रद्धा से दूसरे देवताओं को बलिदान करते हुए पूजन करते हैं वे भी यद्यपि मेरा ही पूजन करते हैं किन्तु उनका पूजन विधि रहित समझना चाहिये।

मैं स्वामी भोगों सकल, सब यागन कर भोग।
अवनति लहइ न जानि मुहि, तत्व रूप ते लोग॥

मैं स्वामी और सब यज्ञों के भोगों को भोगने वाला हूँ, वे लोग मुझे तत्व रूप से न जान कर गिर जाते हैं।

देव पूजि देवन पहँ जाहीं * पितर उपासक पितरन पाँहीं॥
भूतन पूजक भूतन नेरे * मो कहँ मिलहिं उपासक मेरे॥

देवताओं के पूजने वाले देवताओं के पास जाते हैं, पितरों के उपासक पितरों के पास जाते हैं, भूतों के पूजने वाले भूतों के पास जाते हैं, और मेरी उपासना करने वाले मुझे मिलते हैं।

पत्र पुष्प फल जल जो कोई * भक्ती सहित चढ़ावत मोई॥
सो सब हव्य प्रेम रस साना * गहत मोद भरि मैं भगवाना॥

जो कोई मुझको भक्ति से फूल पत्ता फल या पानी चढ़ाता है वह प्रेम से दिया हुआ हव्य मैं भगवान प्रसन्न होकर ग्रहण करता हूँ।

जो कछु खाहु पियहु अरु देहू * पुनि जो तप व्रत होम करेहू॥
औरहु कर्म करहु जो भाई * सब मम अरपण करहु सदाई॥

जो कुछ खाओ पीओ, दान करो, तप-व्रत, या होम करो, और भी जो कुछ कर्म करो सो सब कर्म हमेशा मेरे अर्पण करो।

छूटहिं कर्म बंध इमि तेरे * फल शुभाशुभ बहु विधि घेरे॥
पुनि संन्यास योग दृढ़ताई * बंध निवारि मिलहु मुहि आई॥

इस तरह से तेरा भले बुरे कर्मों का बन्धन जो तुझे बहुत भांति घेरे हुए है छूट जायगा। फिर संन्यास योग की दृढ़ता के द्वारा बन्धन को दूर करके मुझ में आकर मिल जाओ।

मैं समान सब भूतन माहीं * कबनहुं शत्रु मम मम नाहीं॥
पै जे भजहिं मोहि दृढ़ प्रेमा * ते मो महँ मैं तिन महँ नेमा॥

मैं सब प्राणियों के लिये एक सा हूँ, मेरा दोस्त और दुश्मन कोई भी नहीं है, किन्तु जो लोग मुझे दृढ़ प्रेम से भजते हैं, वे मुझ में और मैं उनमें रहता हूँ, यह नियम समझो।

यदि बड़ पापी हू भजहि, एक भाव दृढ़ मोय।
साधुहि ताकहँ मानिये, निश्चय पूरण जोय॥

यदि कोई बड़ा भारी पापी भी दृढ़ भक्ति से मेरा भजन करे, तो उसको भी अच्छा पुरुष ही समझना चाहिये, अगर उसका निश्चय पूरा पूरा हो।

अल्पहि काल धर्मयुत होई * शान्ति निरन्तर पावहि सोई॥
अरजुन आनहु दृढ़ विश्वासा * किमपि नशावत नहिं मम दासा॥

थोड़े ही समय में वह धर्मात्मा होकर के निरन्तर शान्ति को पाता है, हे अर्जुन! तुम अपने मन में दृढ़ विश्वास रक्खो कि मेरे भक्त का नाश कभी भी नहीं होता।

पाप योनि जे जनमहिं आइ * वैश्य शूद्र अरु नारि कहाई॥
तेऊ मम आश्रय गहि पारथ * पावहिं परम गती परमारथ॥

जो वैश्य शूद्र और स्त्री आदि की पाप रूप योनियाँ हैं, उनमें जन्म लेने वाले भी मेरा आश्रय ग्रहण करके मोक्ष रूप परमगति को प्राप्त होते हैं।

पुण्यवान द्विज क्षत्रिन ताईं * कहहु बहोरि कवन कठिनाई॥
यह संसार अनित दुख मूला * पाय भजहु मुहि जिमि नस शूला॥
इमि मन राखि परायण मोरे * मो कहँ पाय नसहिं दुख तोरे॥

फिर पुण्यवान जो ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं उनके लिये कहो कौनसी कठिनाई है। यह संसार अनित्य है और दुःख रूप है, इसमें आकर मेरा भजन करना चाहिये, जिससे दुःखों का नाश हो। इस प्रकार सदा मन को मुझ में लगाये रहने से मुझको पाकर तेरे सब दुख दूर हो जायंगे।

सुनि प्रभु वचन प्रेम रस साने॥ पुलकि गात पारथ हरषाने ॥
करहि नमन सो वारम्बारा ॥ मन महँ वाढ़ी भक्ति अपारा ॥

भगवन् के प्रेम युक्त वचनों को सुनकर अर्जुन का शरीर पुलकायमान हुआ और अर्जुन वहुत प्रसन्न हुआ। अर्जुन वारम्वार नमस्कार करने लगा और मन में अपार भक्ति का वेग वढ़ा।

गुप्त ज्ञान वरणन कियो, श्रीकृष्ण भगवान।
श्रद्धा सहित विचारहीं, जे नर चतुर सुजान ॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने यह गुप्त ज्ञान अर्जुन को दिया जो चतुर ज्ञानी पुरुष हैं वे इस ज्ञान का श्रद्धा युक्त होकर विचार करते हैं।

इति नवम अध्याय।

❋ अथ दशम अध्याय ❋

श्री भगवानुवाच

महा बाहु शृणु और हू, उत्तम वचन वहोर ।
कहउँ परम सन्तोष लगि, अति हित कारक तोर ॥

हे महाबाहो! और भी फिर मेरे उत्तम कथन को सुनो क्योंकि यह कथन तेरे लिये बहुत हित करने वाला है इसलिये तेरे परम सन्तोष के लिये मैं कहता हूँ ।

देव न जानहिं उत्पति मेरी ❋ महा ऋषिन तिमि नहिं सो हेरी ॥
जे कछु देव ऋषी गण ताता ❋ मैं ही सब कर आदि विधाता ॥

देवता मेरी उत्पत्ति को नहीं जानते, महर्षि लोगों ने भी मेरी उत्पत्ति नहीं देखी है; हे तात ! जितने देवता और महर्षि लोग हैं उनको उत्पन्न करने वाला विधाता मैं हूँ फिर वह मेरी उत्पति कैसे जान सकते हैं यह भाव है ।

अज अनादि मोकहँ जे जानहिं❋ लोक महेश्वर पुनि पहिचानहिं ॥
तिन ज्ञानिन कर सम्यक् पापा❋ सहज नशावहिं सब संतापा ॥

जो लोग मुझको अजन्मा और अनादि तथा लोकों का स्वामी जानते हैं उन ज्ञानियों के सब पाप और दुखों का सहज ही नाश हो जाता है ।

छल बल त्यागि बुद्ध अरुज्ञाना❋ क्षमा सत्य शम दम तप दाना ॥
सुखदुखउत्पति अवरविनाशा❋ भय अरु अभय अनेकन आशा ॥

छल बल से रहित बुद्धि और ज्ञान, क्षमा, सत्य, शम (मन को शान्त रखना शम कहाता है), दम (इन्द्रियों को स्ववश करना

दम कहाता है), तप (शभु कार्य में तकलीफ़ उठाना तप कहाता है) और दान, सुख, दुख, उत्पत्ति, और नाश, भय, निर्भयता और नाना प्रकार की आशाएं—

पुनि संतोष अहिंसा समता ❋ कीरति अपकीरति अरु नमता ॥
विविध भाव सब भूतन माहीं ❋ मोसन होंहिं प्रवृत शक नाहीं ॥

और सन्तोष, अहिंसा (किसी को मन वचन और कर्म से दुःख न देने को अहिंसा कहते हैं), कीर्ति, बदनामी, नम्रता यह सब भिन्न-भिन्न भाव सब जीवों में मुझसे ही प्रवृत्त होते हैं इस में कोई शक नहीं है।

सप्त महाऋषि परम पुराने ❋ तिमि प्रसिद्ध मनु चार बखाने ॥
ते मम समरथ मानस जाये❋ तिनकर प्रजा निकर जग छाये ॥

अत्यन्त प्राचीन सात महर्षि और चार प्रसिद्ध मनु ये सब मेरी सामर्थ्य के द्वारा मन से उत्पन्न हुए हैं उनसे अखिल प्रजा समूह उत्पन्न हुआ है।

यह मम योग विभूति जे, जन जानहिं भल रीति।
अचल योग युत होहिं ते, उर आनहु परतीति ॥

यह मेरे योग की विभूति जो लोग भले प्रकार से जानते हैं वे अचल योग के द्वारा मुक्ति पाते हैं इस पर हृदय में विश्वास करो।

मैं उत्पन्न कीन्ह जग सारा ❋ मुहि सन प्रवृत सकल संसारा ॥
अस जिय जानि सदा जे ज्ञानी❋ मो कहँ भजहिं प्रीति उर आनी ॥

मैंने सारे संसार को उत्पन्न किया है और सब संसार मुझसे ही उत्पन्न हुआ है। ऐसा जानकर जो ज्ञानी लोग हैं वे बड़ी प्रीति के साथ मेरा भजन करते हैं।

जिननिज प्राण मनहिंमुहिधारा❋ करहिं परस्पर बोध विचारा ॥
सदा कीरतन मोर सु करहीं ❋ गहि सन्तोष मोद मन भरहीं ॥

जिसने अपने प्राण और मनमें मुझे धारण किया है, और

आपस में मेरा बोध एक दूसरे को कराते हैं, और सदा मेरा ही कीर्तन करते रहते हैं और सन्तोष को धारण करके मन में प्रसन्न होते हैं।

इमि जे अमित प्रीति उर आनी* भजहिं निरन्तर मोकहँ ज्ञानी ॥
देउँ सुबुद्धि योग तिन काँही * जिमिपुनि आयमिलहिं मुहि माँही ॥

इस तरह जो ज्ञानी अत्यन्त प्रेम हृदय में रख कर मेरा भजन करते हैं, उनको मैं ज्ञान योग प्रदान करता हूँ, जिसके प्रताप से वे लोग मुझमें आकर मिल जाते हैं।

मैं भक्तन के आत्म समाया * तिन पहँ राखि अलौकिक दाया ॥
ज्ञान रूप दीपक के द्वारा * नाशहुँ तम अज्ञान अपारा ॥
तब अरजुन जोरे युग पाणी * अस्तुति करन लगे मृदु वाणी ॥

मैं भक्तों के आत्मा में समाया हुआ हूँ, और उन पर महान् दया रखकर ज्ञान रूपी दीपक के जरिये अपार अज्ञान रूप अंधेरे का नाश कर देता हूँ। तब अर्जुन ने दोनों हाथ जोड़े और कोमल-वाणी से स्तुति करने लगे।

आपहि श्रेष्ठ पवित्र अति, पारब्रह्म पर धाम।
दिव्य रूप प्राचीन तिमि, आदि देव अज राम ॥

हे कृष्ण ! आप ही श्रेष्ठ हैं, अत्यन्त पवित्र हैं, परब्रह्म हैं, परमधाम हैं, दिव्य रूप है,अत्यन्त प्राचीन हैं, आदि देव हैं, अजन्मा हैं, व्यापक हैं।

देवल असित व्यास अरु नारद * देव ऋषी जे बुद्धि विशारद ॥
ऋषिमुनि सब तुम कहँ असगावा* तुमपुनि मोहि स्वयम् समुझावा॥

देवल, असित, व्यास, और नारद इत्यादि देवर्षि लोग जो महान् बुद्धि निधान हैं; और भी ऋषि मुनि सब तुम को ऐसा ही कथन करते हैं और तुम स्वयम् भी मुझे समझते हो।

जो कछु प्रभु तुम मोहि बखाना * सत्यहि सत्य सु मैं सब माना॥
हे भगवान् अचिन्त्य मुरारी * तुमहिं न जानत देव सुरारी॥
हे भूतेश जगत के स्वामी * हे भूतोद्भव अन्तर्यामी ॥
हे पुरुषोत्तम देव महाना * तुम अपने कहँ आपहि जाना ॥

सो हे स्वामी जो कुछ आपने मुझे बतलाया है, उसे मैं सच ही मानता हूँ। हे चिन्तन के अयोग्य कृष्ण ! तुम को देवता और राक्षस कोई नहीं जानते।

हे जीवों के ईश्वर और संसार के स्वामी, हे भूतों को उत्पन्न करने हारे अन्तर्यामी, हे पुरुषोत्तम महान् देव तुम अपने को आप ही जानते हो, भाव यह कि तुमको दूसरा कोई नहीं जान सकता।

जे कछु दिव्य विभूति तुम्हारी * मोकहँ कहिये प्रभु विस्तारी॥
जिन सन करि व्यापक जगसारा* तुम ठहरे प्रभु जगदाधारा॥

हे स्वामी ! जो कुछ आप की दैवी चमत्कारी है सब मुझ में विस्तार पूर्वक कहिये, जिनसे सारे संसार को आप व्याप्त करके ठहरे हुए हैं।

हे योगेश्वर सुमिरन द्वारा * किमि जानहुँ सतरूप तुम्हारा॥
किन किन भावन ध्यावहुँ तोही * हे भगवान कहहु यह मोही॥

हे योगेश्वर कृष्ण जी ! मैं तुम्हारा स्मरण करते हुए तुम्हारे सत्य रूप को कैसे जानूँ। हे भगवान् ! किन किन भावों में मैं आपका ध्यान करूँ यह सब आप मुझे बतलाइये।

पुनि निज योग विभूत हू, कहहु सहित विस्तार।
हरि तृप्ती नहीं होय सुनि, अमृत वचन तुम्हार॥

फिर अपने योग की विभूति को भी विस्तार पूर्वक कहिये। हे कृष्ण तुम्हारे अमृत सरीखे वचनों को सुनकर तृप्ति नहीं होती।

कह हरि पूजहुँ तव मन कामा * दिव्य विभूति कहउँ अभिरामा॥
पै जे मुख्य सुनहु सुइ सोई * किय विस्तार तु अन्त न होई॥

भगवान् बोले कि हे अर्जुन ! मैं तेरी इच्छा पूरी करे देता हूँ, और अपनी सुन्दर दैवी विभूतियों का वर्णन करता हूँ, किन्तु मुख्य मुख्य विभूतियों का ही वर्णन सुनो, क्योंकि विस्तार का तो कोई अन्त ही नहीं है ।

आत्म रूप मोहि जानहु भाई * सब भूतन उर रहा समाई ॥
मैं ही आदि मध्य अवसाना * सब भूतन कर कह भगवाना ॥

भगवान् कहने लगे कि हे भाई ! मैं आत्म रूप से सब प्राणियों के हृदय में समाया हुआ हूँ, मैं ही सब प्राणियों का आदि बीच और अन्त हूँ ।

मैं विष्णु आदित्यन बीची * मरुद्गणन महँ तथा मरीची ॥
प्रकाशकन महँ रवि मुहि जानहुँ * नक्षत्रन महँ शशि पहिचानहुँ ॥

आदित्यों (आदित्य नाम १२ महीनों का है) में मैं विष्णु हूँ, मरुद्गणों में मैं मरीची हूँ, प्रकाश करने वालों में मैं सूर्य हूँ, नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ ।

इन्द्र सुरन महँ मैं सुख धामा * वेदन महँ मुहि जानहुँ सामा ॥
इन्द्रिन महँ मन मानहुँ मोही * भूतन माहिं चेतना ओही ॥

सुख का धाम जो इन्द्र वह देवताओं में मेरा स्वरूप है; वेदों में मैं साम वेद हूँ, इन्द्रियों में मैं मन हूँ, प्राणियों में चैतन्यता मैं हूँ ।

राक्षस यक्षन माहिं कुबेरू * शिखरन महँ तिमि लखहु सुमेरू ॥
वसुन माहि पावक मैं ताता * रुद्रन महँ शंकर कहलाता ॥

राक्षस और यक्षों में मैं कुबेर हूँ, और चोटियों में मैं सुमेरु हूँ, वसु देवताओं में मैं अग्नि हूँ, रुद्र देवताओं में मैं शंकर हूँ ।

पुरोहितन महँ बृहस्पति, सागर सगरन पाहिं ।
स्वामी कार्तिक जानु मुहि, सेनापतियन माहिं ॥

पुरोहितों में मैं बृहस्पति हूँ; तालाबों में मैं सागर कहा जाता हूँ; सेनापतियों के समूह में स्वामी कीर्तिक मुझको जानो।

महाऋषिन महँ भृगु मैं भाई * एकाक्षर तिमि गिरा सुहाई॥
यज्ञन महँ जप मोकहँ मानहुँ * अचलन माहिं हिमाचल जानहुँ॥

महर्षियों में मैं भृगु हूँ, वाणी में एक अक्षर रूप ओ३म् मैं हूँ। यज्ञों में जप यज्ञ मुझ को जानो, और परवतों में हिमालय मुझको जानो।

चित्ररथहि गंधर्वन माहीं * देव ऋषिन महँ नारद काँही॥
तरून माहिं तरु पीपर केरा * सिद्धन रूप कपिल मुनि मेरा॥

गन्धर्वों में मैं चित्ररथ हूँ, देवर्षियों में मैं नारद हूँ, वृक्षों में मैं पीपल का पेड़ हूँ, सिद्ध पुरुषों में मैं कपिल मुनि हूँ।

उच्चैश्रवस नाम कर घोरा * अश्वन महँ अमृत रूप सु मोरा॥
नरन माहिं मुहि जानु नरेशा * तिमि हाथिन महँ दिव्य गजेशा॥

मैं घोड़ो में उच्चैश्रवा हूँ, मनुष्यों में राजा हूँ, हाथियों में ऐरावत नाम का दिव्य हाथी हूँ।

दैत्यन महँ प्रह्लाद मैं, गिननहार तिमि काल।
पशुन माहिं मैं केहरी, पक्षिन गरुड़ विशाल॥

दैत्यों में मैं प्रह्लाद हूँ गिनने वालों में मैं काल हूँ, पशुओं में शेर हूँ और चिड़ियों में मैं बाज हूँ।

पवन रूप मैं पावन कारिन * राम रूप तिमि आयुध धारिन॥
मैं पुनि मकर झषन के माँहीं * श्री गंगा वर नदिन मगाहीं॥

पवित्र करने वालों में मैं हवा हूँ, हथियार धारण करने वालों में मैं राम हूँ, जलचरों में मैं मगर हूँ, नदियों में मैं गंगा हूँ।

जो जग दीख पदारथ नाना * मैं सब कर भव विच अवसाना॥
वचन कर भाषण मुहि जानहुँ * विद्यन महँ अध्यात्म विज्ञानहुँ॥

संसार में जितने पदार्थ दीखते हैं, उन सब का आदि मध्य और अन्त मैं हूँ, वक्ता लोगों में भाषण की शक्ती मैं हूँ, और विद्याओं में आत्मज्ञान रूप विद्या मैं हूँ।

अच्छरन महँ मैं तात अकारा* द्वन्द्व समासन महँ निरधारा॥
मैं धाता मम मुख चहुँ ओरी* तिमि शृणु अक्षय काल वहोरी॥

अक्षरों में मैं अकार हूँ, समासों में मैं द्वन्द्व समास हूँ, मैं सब को धारण करने वाला हूँ, मेरा मुख सब तरफ़ है, और कभी क्षय न होने वाला काल मैं हूँ।

जे उत्पन्न होहि जग आई * सबहि हरों मैं काल कहाई॥
नारिन महँ मैं क्षमा बड़ाई * धृति श्री गिरा सुरति मति भाई॥

जो कोई संसार में उत्पन्न होते हैं, उन सब को नाश करने वाली मृत्यु मैं हूँ; स्त्रियों में अर्थात् स्त्री लिंग पदार्थों में क्षमा, बड़ाई, धीरताई, लक्ष्मी, बुद्धि, वाणी इत्यादि मैं हूँ।

सामन महँ मैं बृहत सामा * छन्दन महँ गायत्री नामा॥
मासन महँ मैं अगहन पावन * ऋतुन माहिं ऋतु राज सुहावन॥

सामों में मैं बृहत साम हूँ, छन्दों में गायत्री हूँ, महीनों में मैं पवित्र अगहन का महीना हूँ, ऋतुओं में वसन्त हूँ।

तेजस्विन कर तेज मैं, द्यूत अहउँ छलवान।
सतोगुणिन महँ सत्व तिमि, जय उद्यम मुहि जान॥

तेजवानों में तेज मैं हूँ। छल करने वालों में जुआ मैं हूँ सत्विक पुरुषों में सतोगुण मैं हूँ, इसी प्रकार जय और व्यवसाय (उद्योग) मैं हूँ।

पाण्डु वंश अर्जुन मैं ताता * यादव कुल वसुदेव कहाता॥
मुनिन माहिं मैं व्यास स्वरूपा* कविन माहिं उशना मम रूपा॥

पाण्डवों में मैं अर्जुन हूँ, और यादवों में वासुदेव हूँ, मुनियों में व्यास हूँ, और कवियों में शुक्र (उशना) कवि हूँ।

दमन करन हारन महँ दण्डा॥ विजयिन कर मैं नीति अखण्डा ॥
ज्ञानिन महँ मैं ज्ञान अनूपम॥ गुह्यन महँ तिमि मौन स्वरूपम ॥

राज्य करने वालों का दण्ड मैं हूँ, विजय प्राप्त करने वालों की अखण्ड नीति मैं हूँ, ज्ञानियों में ज्ञान मैं हूँ, और गुप्त पदार्थों में मौन मैं हूँ।

सब भूतन कर बीज अनादी॥ मो कहँ जानहिं आतम वादी ॥
जे जड़ चेतन यहि जग माहीं॥ मेरे बिन सु कतहुँ कछु नाहीं ॥

सब भूतों का जो कुछ अनादि कारण है वह मैं हूँ ऐसा आत्मज्ञानी लोग जानते हैं। जो कुछ जड़ और चैतन्य जगत् में है वह मेरे बिना कहीं कुछ भी नहीं है।

दिव्यविभूतिन कर नहिं अन्ता॥ कहउँ कहाँ लगि कह भगवन्ता ॥
जो विस्तार कहा कछु तोही॥ उदाहरन इव जानहु ओही ॥

भगवान् बोले मेरी दैवी चमत्कारियों का कोई अन्त नहीं है कहाँ तक बखान किया जावे। जो कुछ विस्तार तुझे सुनाया है, वह तेरे समझाने के लिये दृष्टान्त के समान है।

जो कछु प्रभुता लछिम बड़ाई॥ तात कबहुँ कहुँ किनहूँ पाई ॥
सो सब जानहुँ मोर प्रभावा॥ किञ्चित तेज अंश तिन पावा ॥

जो कुछ अधिकार, लक्ष्मी, बड़ाई किसी ने कहीं पर किसी भी समय पाई है, वह केवल मेरे प्रभाव का कारण है, मेरे तेज का एक छोटा सा अंश उनको मिला है ऐसा जानो।

अर्जुन बहु जाने कहा, समुझि लेहु यह सार।
मैं ने एकहि अंश ते, टापि लीन्ह संसार ॥

हे अर्जुन! बहुत जानने से क्या मतलब है सार इस बात को समझ लो कि मैंने अपने एक अंश से सारा ब्रह्माण्ड व्याप्त कर रक्खा है।

इति दशम अध्याय।

अथ एकादश अध्याय

अर्जुन उवाच

परम गुह्य अध्यात्म यह, कीन्ह जु प्रभु उपदेश।
दया कीन्ह मोपहँ हरी, हरन हेतु भ्रम लेश॥

हे प्रभु! आपने मुझ पर महान् कृपा करी है जो मेरे भ्रम अज्ञान को दूर करने के लिये इस परम गुप्त आत्म ज्ञान का उपदेश किया है।

भूतन उत्पति लय विस्तारी * तिमि महिमा हु अक्षय तुम्हारी॥
हे हरि कमल नयन तुम पाहीं * भली भाँति सुनि लीन्ह गुसाँई॥

हे कमल के समान नेत्रों वाले कृष्ण भगवान्! मैंने आपसे अच्छी तरह से सब भूत प्राणियों की उत्पत्ति और नाश और विस्तार को तथा तुम्हारी अक्षय महिमा को सुना।

तुम ईश्वर निज कीन्ह बखाना * सो मैं सबहि सत्य उर आना॥
पुरुषोत्तम तव ईश्वर रूपा * देखन चहहुँ स्वरूप अनूपा॥

हे कृष्ण! आप ईश्वर हैं और आपने अपना जैसा वर्णन किया, मैं उसको वैसा ही सच सच मानता हूँ। हे पुरुषोत्तम कृष्णजी! मैं आपके अनुपम ईश्वर रूप को देखना चाहता हूँ।

मुहि सम्भव मानहुँ प्रभु जोई * देखन लगि स्वरूप तव सोई॥
तौ योगेश्वर सब सुख राशी * रूप दिखावहु मुहि अविनाशी॥

हे प्रभु! यदि आप मुझे अपने उस स्वरूप के देखने को समर्थ समझें तो हे योगेश्वर! सर्व आनन्द रूप आप वह अपना अविनाशी स्वरूप मुझे दिखलाइये।

कह हरि पारथ देखहु मेरे * नाना विधि आकार घनेरे ॥
नाना वर्ण सु दिव्य स्वरूपा* शतशह और सहस्रन रूपा ॥

भगवान् बोले कि हे पार्थ मेरे नाना प्रकार के वहुत से दैवी स्वरूपों को जो नाना प्रकार के वर्णों तथा आकारों वाले हैं, ऐसे सैकड़ों और हज़ारों अनन्त रूपों को देखो।

रुद्रादित्य वसूगण देखहु * पुनि दो अश्वनि मरुतन पेखहु ॥
यहु आश्चर्य प्रथम नहिं देखे* भारत अब लखिलेहु विशेषे ॥

हे भारत ! वारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, दो अश्वनी-कुमार, उनचास मरुत, और भी जो चमत्कार पहिले कभी नहीं देखे यह सब मेरे स्वरूप में देख लो।

गुडाकेश मम देह महँ, देखु आज इहि ठौर।
सब जग चर अरु अचर पुनि, जो कछु चाहत और ॥

हे गुडाकेश (निद्रा को जो जीत ले उसे गुडाकेश कहते हैं) अर्जुन ! आज इस जगह मेरे शरीर में सारे चर और अचर संसार को देख ले और भी जो कुछ देखना चाहता हो सो देखले।

रूप अनूपम सोय, इन नयनन दीखे नहीं।
दिव्य चक्षु दिउँ तोय, योग ईश्वरता लखन हित॥

हे अर्जुन ! वह अनुपम मेरा स्वरूप इन (चर्म के नेत्रों से) मानुषी नेत्रों से नहीं दीख सकता, इसलिये मेरे योग के ऐश्वर्य को देखने के लिये मैं तुझे दैवी आँखें देता हूं।

कह सञ्जय राजन सुनिय, तब सो हरि भगवान।
लगे दिखावन पारथहिं, विश्व स्वरूप महान ॥

सञ्जय राजा धृतराष्ट्र से कहने लगे कि हे राजन ! तब महा-योगेश्वरहरि भगवान् अर्जुन को अपना महान विराट रूप दिखलाने लगे।

नैन अनेक मुखहु बहुतेक अचम्भन को कछु छोर नहीं ॥
भूषन दैविक साजि रहे हथियार तयार अनेकनहीं ॥
फूल पुसाख अलौकिक धारि सु नीक सुवास लगी तनुहीं ॥
देव महा मुख ओर सबै हरि दीखत भे इमि पारथहीं ॥

भगवान् का वह विराट रूप कैसा था कि उसमें अनेक नेत्र थे, बहुत से मुख थे, आश्चर्यों का कोई अन्त नहीं था, दैवी भूषण सजे हुए थे, अनन्त हथियार तय्यार थे, वह स्वरूप दैवी पोशाख पहिने हुए था, नाना प्रकार की सुगन्धि लगी थी, उस देव के बड़े बड़े भारी मुख चारों तरफ़ थे। इस प्रकार के स्वरूप वाले हरि भगवान् अर्जुन को दीख पड़े।

जो कहुँ सूरज एकहि संग हजार अकाश प्रकाश करैं ॥
संभव है सु अभा तिनकी उह देव प्रभा सम जानि परैं ॥
देव महेश्वर के तन में तब देखत पारथ मोद भरैं ॥
भाग अनेकन माहिं बटो सगरो जग एकहि ठौर धरैं ॥

यदि एक हज़ार सूरज एक साथ आकाश में प्रकाशित हों तो सम्भव है कि उनकी आभा उस महान् देव की ज्योति के समान मालूम पड़े। तब उस महेश्वर के शरीर में अर्जुन ने अनेकों भाग में बटे हुए सारे संसार को एक ही भाग में प्रसन्नता पूर्वक स्थित देखा।

नमस्कार अर्जुन करहि, जोरे निज युग पानि।
रोम खड़े विस्मय भरे, बोले अमृत बानि ॥

तब अर्जुन आश्चर्य से चकित हुआ, उसके शरीर में रोमाञ्च होआया, और श्रीकृष्ण को दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार करने लगा तथा अमृत के समान वचन कहने लगा।

प्रभू देह में दीखते हैं तुम्हारे।
सभी भाँति के जीवधारी अपारे ॥

कमल आसनी पै विधाता पधारे।
ऋषीदेव गंधर्व औ नाग सारे॥

हे प्रभु! आपके शरीर में सब प्रकार के अनन्त जीव दीखते हैं, कमल के आसन पर ब्रह्मा बैठे हैं, ऋषि लोग देवता और गन्धर्व तथा नाग लोग सब मौजूद हैं।

भुजा नैन नासा सु मूँ पेटनाना।
दिखाता नहीं रूप का अन्तआना॥
अहो देवविश्वेश जाता न जाना।
तुम्हारा कहीं आदि मध्यावसना॥

आपके बहुत सी भुजायें हैं, आँखें हैं, नाकें हैं, मुख हैं, और पेट हैं, आपके रूप का कोई अन्त नहीं दिखाई देता। हे देव जगत के ईश्वर आपका शुरू, बीच, और अन्त नहीं जाना जाता।

गदा चक्र ले शीश पै कीटधारा।
सभीओर है तेज व्यापकतुम्हारा॥
असम्बेद्य दुर्दृश्य देते दिखाई।
प्रभासूर्य औ तेज की भी लजाई॥

हे भगवान! आपके मस्तक पर कीट है, हाथों में गदा है, चक्र है, और आप का तेज सब ओर व्यापक हो रहा है, आप समझने के योग्य नहीं हैं, आप दीखने योग्य नहीं हैं, आपके सामने सूर्य और अग्नि की प्रभा भी तुच्छ है।

तुम्हीं जानने योग्यहो निर्विनाशी।
तुम्हीं हो महादेव संसार राशी॥
तुम्हीं धर्म प्राचीन के हो सहारे।
तुम्हींहो पुरुषआदि अव्यैअपारे॥

हे प्रभु! आप ही अविनाशी तथा जानने योग्य हैं। हे महादेव! आप ही इस संसार के आधार स्तम्भ हैं, आप ही सनातनधर्म के रक्षक हैं आप ही अव्यय और अपार सनातन पुरुष हैं।

नहीं आदि ही मध्य ना अन्त तेरे।
शशी सूर्य से नेत्र बाहू घनेरे॥
प्रभू तेज से आपने जग तपाया।
प्रदीप्ताग्नि सा मुख नहीं पार माया॥

आपका आदि मध्य और अन्त नहीं है, पाप की आंखें सूरज और चाँद हैं, आपके अनेकों भुजाएं हैं, हे भगवान्! आपने अपने तेजसे सारे संसार को तप्त कर रक्खा है, प्रज्वलित अग्नि के समान आप का मुख है, आपकी माया अपार है।

जो अन्तर द्यौ भूमि महँ, सो सब तुम ढकि लीन्ह।
हेभगवन् तुम एक ने, सब दिशि व्यापित कीन्ह॥

हे भगवन्! आकाश और भूमिके बीचमें जो फ़ासला है, वह सब आपने ढक लियाहै, पाप अकेले ने सारी दिशाओं का व्याप्त कर रक्खा है।

लखि लखि प्रभू तुम्हार, अद्भुत उग्र स्वरूप यह।
होहिं सु जगदाधार, तीनलोक भय भीत अति॥

हे जगत् के आधार स्वामी! तुम्हारे अद्भुत और उग्र स्वरूप को देख देखकर त्रिलोकी अत्यन्त भयभीत हो रही है।

तुमहिं प्रवेश करहिं सुर यूथा॥भय वश विनवहिं अपर वरूथा॥
बहु विधि अस्तुति करहिं मुनिन्दा॥महाऋषी सिद्धनके वृन्दा॥

हे प्रभो! देवताओं के समूह आपके स्वरूप में घुस रहे हैं। और दूसरे भयभीत हुये आपकी विनती कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धों के समूह तथा मुनि लोग आपकी स्तुति कर रहे हैं।

रुद्रादित्य पितर गंधर्वा॥विश्वेदेव मरुत वसु सर्वा॥
सिद्ध समूह सुयक्ष सुरारी॥अश्वनि कुमर रुद्रगण भारी॥
देखि रहे सबही तव ओरी॥अतिही विस्मित भये बहोरी॥

वसु, रूद्र, आदित्य, पितर, गन्धर्व, मरूत, विश्वेदेव, अश्विनि कुमार, रूद्रगण, यक्ष और राक्षस, तथा सिद्धों के समूह यह सब अत्यन्त चकित हुए आपको देख रहे हैं।

वहु मुख नैन स्वरूप महाना*जंघा चरण बाहु तव नाना॥
बहुत उदर बहु दन्त कराला*देखि देखि तव रूप विशाला॥
दुखी भये सब लोक डराहीं* मैं भयभीत महा मन माहीं॥

आपके बहुत से मुख हैं, और नेत्र हैं, आपका स्वरूप बहुत बड़ा है, आपके बहुत से हाथ पैर और जंघा हैं बहुत से पेट हैं, तथा बहुत सी भयंकर डाढ़े हैं।

आप के इस विशाल रूप को देख देख कर सारे लोक दुखी होकर डर रहे हैं, और मैं अपने मन से बहुत भयभीत हो रहा हूँ।

नभ छुइरहे वर्ण बहुधारे*दीप्त विशाल नेत्र मुख फारे॥
तुमहिं निरखि मम मन घबरावा*धीरज छुटइ शान्ति नहिंपावा॥

हे भगवन् ! आप आकाश को छू रहे हैं, आप में अनेक वर्ण हैं, आपकी आँखे तेजोमय और विशाल है, आपने मुख फाड़ा हुआ है। आप को देखकर मेरा मन घबराता है, मेरा धैर्य छूट जाता है तथा मैं शान्ति को नहीं पाता।

डाढ़ भयङ्कर विकट मुख, प्रलय अग्नि सम्पन्न।
दिशि भूलिउ रक्षा रहित, भगवन होहु प्रसन्न॥

हे भगवन ! प्रलय काल के अग्नि समान प्रदीप्त भयंकर दांत आप के विकराल मुख में हैं, आप के इस डरावने रूप को देख कर मैं रक्षा रहित हुआ दिशाओं को भूल गया हूँ, हे देव अब आप प्रसन्न हूजिये।

सुत धृतराष्ट्र सहित महिपाला*द्रोण कर्ण कृप भीष्म कृपाला।
तिमि हमरिहु सेना के वीरा*जे बलवान विपुल रणधीरा।
तव मुख शीघ्रसु करहिं प्रवेश*दाढ़ भयंकर पावहिं क्लेश।

धृतराष्ट्र के पुत्र अन्य राजा लोगों के साथ, तथा द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, और भीष्म, इसी तरह हमारी सेना के भी बड़े बड़े रणधीर योधा लोग आप के मुख में जल्दी से घुसे चले जाते हैं। वे आप की भयंकर डाढ़ों के नीचे महान् क्लेश को पाते हैं।

अपर गये पिसि दांतन संगा*चूरण दीखत उत्तम अंगा ॥
योधा मृत्यु लोक कर सारे*जाहिं घुसे मुख ज्वलित तुम्हारे ॥

दूसरे योधा लोग आप के दाँतों के साथ पिस गये हैं, उनके उत्तम अंग चूर्ण हो गये हैं, मृत्यु लोक के सारे योद्धा आप के प्रज्वलित मुख में घुसे जाते हैं।

यथा नदिन कर अमित प्रवाहा*सागर प्रमुख शीघ्र गति वाहा ॥
तथा प्रवेश करहिं मुखआई*नाश हेतु सब लोक गुसाँई ॥

जिस प्रकार नदियों के बड़े प्रवाह समुद्र की ओर तेज़ चाल से बहते हैं, उसी प्रकार हे स्वामी ! सब लोक आप के मुख में जल्दी जल्दी नाश होने के लिये घुसे चले जाते हैं।

जिमि सवेग धावहि इक संगा*दीपक जोति अनेत पतंगा ॥
ज्वलित बदन लोकन गहि नीके*चाटत जीभ भावते जीके ॥
विष्णु प्रखर तेज तव व्यापा*उग्र ज्वाल तुम सब जग तापा ॥

आपके मुख में लोग इस प्रकार घुसे जाते हैं, जिस प्रकार दीपक की ज्योति में बहुत से भिनगे एक संग बड़े वेग से दौड़ते हैं। आप अपने प्रज्वलित मुख में लोकों को दबा कर प्रीति से अपनी जीभ से होटों को चाटते हैं, हे विष्णो ! आपने अपने उग्र तेज से सारे संसार को तप्त कर रक्खा है, आप का उग्र तेज सब दिशाओं में व्यापक हो रहा है।

उग्र रूप तुम कवन हो, कहिय कृपा करि मोहि।
सत्वर होहु प्रसन्न प्रभु, नमस्कार बहु तोहि ॥

हे देव ! इस उग्र रूप वाले आप कौन हैं ? कृपा करके यह बात मुझे बतलाइये। हे प्रभो ! आप जल्दी से प्रसन्न हूजिये, मैं आपको बहुत कुछ नमस्कार करता हूँ।

देव महा विकराल, जाना चाहों तुमहिं मैं।
उद्यत हो इह काल, कहा करन के हेतु प्रभु ॥

हे महान् विकराल स्वरूप देव ! मैं आप को जानना चाहता हूँ, हे प्रभो ! आप क्या करने के लिये इस समय उद्यत हैं।

बोले हरि मैं काल कराला*लोक सँहार प्रवृत्ति इहि काला ॥
दुहुँ सेनन महँ योधा जोई* तव बिन मारिहु बचइ न कोई ॥

भगवान् बोले कि मैं विकराल काल हूँ और इस समय लोकों का संहार करने के लिये उद्यत हूँ। दोनों सेनाओं में जो योधा लोग हैं उनमें से तेरे बिना मारे हुए भी कोई नहीं बचेगा।

असजिय जानि उठहु यश लेहू*रिपुन जीति भुवि राज करेहू ॥
प्रथमहि मैं मारे सब कोऊ*निमित मात्र अर्जुन तुम होऊ ॥

ऐसा जान करके हे अर्जुन ! उठो और यश को प्राप्त हो, शत्रुओं को जीत कर पृथ्वी का राज्य करो। मैंने तो पहिले ही से सब को मार रक्खा है, तुम तो केवल निमित्त मात्र हो जाओ।

भीष्म द्रोण कर्ण वर वीरा*अपरहु जे योधा रणधीरा ॥
जनि घबराहु हनहु मृत मारे*लरहु जीत रण हाथ तुम्हारे ॥

भीष्म, द्रोण, कर्ण आदिक जो उत्तम वीर हैं वे, और भी जो दूसरे योधा लोग हैं यह सब मृतक के समान हैं, हे अर्जुन ! तुम घबराओ मत इन सबको मारो लड़ाई में जीत तुम्हारी होगी।

संजय कहा सुनिय महिपाला*जब बोले अस वचन गुपाला ॥
सुनत किरीटी थरथर काँपा*जोरे हाथ अतिहि भय व्यापा ॥
नमस्कार करि बारम्बारा*गदगद कण्ठ सु वचन उचारा ॥

सञ्जय कहने लगे कि हे राजन् सुनिये जब भगवान् कृष्णने ऐसे वाक्य कहे तो उनको सुनकर अर्जुन अत्यन्त भयभीत होकर थर थर काँपने लगा और दोनों हाथ जोड़ कर बारबार नमस्कार करता हुआ गद्‌गद कंठ से कहने लगा।

हरि तव कीरति सब सुखी, मोद लहइ संसार।
राक्षस डरि भागहिं दिशन, सिद्ध नमहिं शतवार॥

हे कृष्ण! आपकी कीर्ति से संसार आनन्दमय हो रहा है और सब कोई सुखी है; राक्षस लोग डर कर भिन्नभिन्न दिशाओं की ओर भाग रहे हैं, और सिद्ध लोग आपको सैकड़ों बार नमस्कार कर रहे हैं।

हे प्रभु तुमहीं रचिउ विधाता॥कस न नमहि तुम जगपितु माता॥
तुम देवेश अनादि अनन्ता॥अक्षर सदसद पर भगवन्ता॥

हे प्रभो! आपने ब्रह्मा को उत्पन्न किया है, और आप इस जगत् के पिता और माता हैं, फिर वे आपको नमस्कार क्यों न करें। आप देवताओं के भी ईश्वर हैं, आप अनादि हैं, आप अनन्त हैं, आप अविनाशी हैं, आप सत् और असत् दोनों से परे भगवान् हैं।

आदि देव अरु पुरुष पुराना॥तुमहीं जग कर परम निधाना॥
वेत्ता वेद्य परम पुनि धामा॥व्यापक रूप अनन्त अकामा॥

आप आदि देव हैं, और सनातन पुरुष हैं आप इस जगत् के महान् आश्रय हैं, आपही जानने वाले हैं और आप ही जानने के योग्य हैं, आप ही परम धाम रूप हैं, आप व्यापक हैं, अनन्त, हैं और निष्काम हैं।

विद्युत अनिल शशि सूरज तारा॥सबहि प्रकाशत तेज तुम्हारा॥
वायु वरुण यम तुम धननादा॥प्रजापतिहु कर पुनि पर दादा॥

हे देव ! इस उग्र रूप वाले आप कौन हैं ? कृपा करके यह बात मुझे बतलाइये। हे प्रभो ! आप जल्दी से प्रसन्न हूजिये, मैं आपको बहुत कुछ नमस्कार करता हूँ।

देव महा विकराल, जाना चाहों तुमहिं मैं।
उद्यत हो इह काल, कहा करन के हेतु प्रभु ॥

हे महान् विकराल स्वरूप देव ! मैं आप को जानना चाहता हूँ, हे प्रभो ! आप क्या करने के लिये इस समय उद्यत हैं।

बोले हरि मैं काल कराला॥लोक सँहार प्रवृत्ति इहि काला॥
दुहुँ सेनन महँ योधा जोई॥ तव विन मारिहु बचइ न कोई॥

भगवान् बोले कि मैं विकराल कालहूं और इस समय लोकों का संहार करने के लिये उद्यत हूँ। दोनों सेनाओं में जो योधा लोग हैं उनमें से तेरे बिना मारे हुए भी कोई नहीं बचेगा।

असजिय जानि उठहु यश लेहू॥रिपुन जीति भुवि राज करेहू॥
प्रथमहिं मैं मारे सब कोऊ॥निमित मात्र अर्जुन तुम होऊ॥

ऐसा जान करके हे अर्जुन ! उठो और यश को प्राप्त हो, शत्रुओं को जीत कर पृथ्वी का राज्य करो। मैंने तो पहिले ही से सब को मार रक्खा है, तुम तो केवल निमित्त मात्र हो जाओ।

भीष्म द्रोण कर्ण बर बीरा॥अपरहु जे योधा रणधीरा॥
जनि घबराहु हतहु मृत सारे॥लरहु जीत रण हाथ तुम्हारे॥

भीष्म, द्रोण, कर्ण आदिक जो उत्तम वीर हैं वे, और भी जो दूसरे योधा लोग हैं यह सब मृतक के समान हैं, हे अर्जुन ! तुम घबराओ मत इन सबको मारो लड़ाई में जीत तुम्हारी होगी।

संजयकहा सुनिय महिपाला॥जब बोले अस बचन गुपाला॥
सुनत किरीटी थरथर काँपा॥जोरे हाथ अतिहि भय व्यापा॥
नमस्कार करि बारम्बारा॥गदगद कण्ठ सु बचन उचारा॥

सञ्जय कहने लगे कि हे राजन् सुनिये जब भगवान् कृष्णने ऐसे वाक्य कहे तो उनको सुनकर अर्जुन अत्यन्त भयभीत होकर थर थर काँपने लगा और दोनों हाथ जोड़ कर वारवार नमस्कार करता हुआ गद्गद कंठ से कहने लगा।

हरि तव कीरति सब सुखी, मोद लहइ संसार।
राक्षस डरि भागहिं दिशन, सिद्ध नमहिं शतवार॥

हे कृष्ण! आपकी कीर्ति से संसार आनन्दमय हो रहा है और सब कोई सुखी है; राक्षस लोग डर कर भिन्नभिन्न दिशाओं की ओर भाग रहे हैं, और सिद्ध लोग आपको सैकड़ों वार नमस्कार कर रहे हैं।

हे प्रभु तुमहीं रचिउ विधाता*कस न नमहिं तुम जगपितु माता॥
तुम देवेश अनादि अनन्ता*अक्षर सदसद पर भगवन्ता॥

हे प्रभो! आपने ब्रह्मा को उत्पन्न किया है, और आप इस जगत् के पिता और माता हैं, फिर वे आपको नमस्कार क्यों न करें। आप देवताओं के भी ईश्वर हैं, आप अनादि हैं, आप अनन्त हैं, आप अविनाशी हैं, आप सत् और असत् दोनों से परे भगवान् हैं।

आदि देव अरु पुरुष पुराना*तुमहीं जग कर परम निधाना॥
वेत्ता वेद्य परम पुनि धामा*व्यापक रूप अनन्त अकामा॥

आप आदि देव हैं, और सनातन पुरुष हैं आप इस जगत् के महान् आश्रय हैं, आपही जानने वाले हैं और आप ही जानने के योग्य हैं, आप ही परम धाम रूप हैं, आप व्यापक हैं, अनन्त, हैं और निष्काम हैं।

विद्युतअनिल शशि सूरज तारा*सबहि प्रकाशत तेज तुम्हारा॥
वायु वरुण यम तुम घननादा*प्रजापतिहु कर पुनि पर दादा॥

बिजली, आग, चन्द्रमा, सूरज और तारे सब आपही के तेज से प्रकाशित होते हैं, आप ही वायु, वरुण, यम, तथा इन्द्र हैं; तथा आप प्रजापति जो ब्रह्मदेव हैं उनके भी परदादा हैं।

नमस्कार तुहि बार हजारा॥नमस्कार पुनि बारम्बारा॥
सन्मुख और पीठ की ओरी॥नमस्कार सब ओर बहोरी॥

आपको हजारों बार नमस्कार है, आपको बारम्बार नमस्कार है, आपको सामने और पीठ की ओर से नमस्कार है, आपको सब तरफ़ से नमस्कार है॥

शक्ति पराक्रम कर नहिं अन्ता॥व्यापक सर्वरूप भगवन्ता॥
तुमहिं मित्र लखि अनुचित छेरा॥यादव कृष्ण सखा कहि टेरा॥
कहा सु तव महिमा बिन जाने॥सह प्रमाद वा प्रेम अयाने॥

आप की शक्ति तथा पुरुपार्थ का अन्त नहीं है, हे भगवन्! आप व्यापक और सर्वरूप हैं। आपको मित्र जानकर मैंने आपको समय समय पर अनुचित रीत से छेड़ा है और हे यादव, हे कृष्ण तथा हे मित्र कह कर पुकारा है। सो सब आपकी महिमा को न जान कर भोलेपन के कारण अथवा प्रेम में अज्ञान के कारण कहा है।

तुम कहँ जाना मैं हरी, लौकिक मित्र समान।
क्षमा करहु अपराध मम, तुम अक्षर भगवान॥

हे भगवान्! मैंने आपको सांसारिक मित्र के समान समझा था, और आप तो अविनाशी ईश्वर रूप हैं आप मेरे इन अपराधों को क्षमा करिये।

तुम्हरो अपमान कियो हमजो हकिले अथवा सबके समुहीं॥
कहुँ बैठत, ऊठत, सोवत, जागत, खात, खवायत यातनहीं॥

उपहास कियो कछु त्रासदियो विसराहु हरी न धरो मनहीं ॥
अब देव क्षमा करि देहु हमें अपमेय प्रभू विनवौं तुमहीं ॥

हे भगवान्! मैंने जो कभी तुम्हारा अपमान अकेले में या दूसरों के सामने बैठते उठते में सोते में जागते में खिलाते में बातें करने में किया हो अथवा आप की हंसी करी हो वा आपको त्रास दिया हो उसको आप मनमें न रक्खें। हे देव आप मुझे क्षमा करदें हे अचिन्त्य प्रभु मैं आपसे विनती करता हूँ।

लोक चराचर के पिता, पूज्य गुरू वर सोय।
तुम सम तीनों लोक नहिं, अधिक कहां ते होय ॥

आप सब चर और अचर लोकों के पिता हैं, तथा पूज्य गुरु हैं आपके समान तीनों लोक में कोई नहीं है, तो आपसे अधिक कोई कहां से हो सकता है।

करहुँ विविध विधि दण्डप्रणामा॥होहु प्रसन्न ईश सुख धामा ॥
सहहु नाथ अपराध हमारे॥जिमि प्रेमिन के सहहिं पियारे ॥
सखा सखन पितु पुत्रन केरे॥यथा सहहिं अपराध घनेरे ॥

आप को मैं बहुत प्रकार से दण्डवत प्रणाम करता हूँ। हे आनन्द स्वरूप ईश्वर आप प्रसन्न हो जाइये। हे स्वामी! आप मेरे अपराधों को इस प्रकार से सहन कर लीजिये जिस प्रकार प्रेमी अपने प्रेमी के अपराधों को, पिता पुत्र के अपराधों को, मित्र मित्र के अपराधों को सहन कर लेते हैं।

प्रथम न दीख सु अचरज देखी॥नाथ भयउ आनन्द विशेषी ॥
भय वश तदपि व्यथित मनमोरा॥देखि भयावन यह वपु तोरा ॥

पहिले जो आश्चर्य कभी नहीं देखे थे, उन्हें देख कर हे स्वामी मुझे बड़ा आनन्द हुआ। तो भी आपका यह भयानक रूप देख कर डर के मारे मेरा मन दुखी होता है।

रूप दिखावहु प्रथम वहोरी॥होहु मुदित प्रभु विनती मोरी॥
सहस बाहु हे विश्व स्वरूपा॥पुनि दरशाहु चतुरभुज रूपा॥
शिर सोहै सो मुकट तुम्हारे॥देखों गदा चक्र कर धारे॥

हे भगवान् ! मैं विनती करता हूँ कि आप प्रसन्न हो जायँ और फिर अपने प्रथम रूप का दर्शन दें, हे हजारों बाहुओं वाले विराट स्वरूप वाले अब फिर से चतुर्भुज रूप दिखलाइये। आप के सिर पर वही मुकट शोभायमान हो और आप गदा चक्र आदिक धारण किये हों, ऐसा मैं आपको देखना चाहता हूँ।

हरि बोले मम विश्व स्वरूपा॥तेजस आद्य अनन्त अनूपा॥
तुमहिं छाँड़ि शृणु वीर अनूपा॥प्रथम न दीख किनहुँ यह रूपा॥
भयउँ प्रसन्न तुमहिं दरशाया॥परम स्वरूप योग कर माया॥

भगवान् बोले कि हे अर्जुन ! मेरा अनुपम तेजोमय आद्यन्त अनन्त विराट् स्वरूप तुझे छोड़ कर पहिले किसी ने नहीं देखा है। मैंने तुझे अपनी योग माया से प्रसन्न होकर यह स्वरूप दिखलाया है।

शृणु मम रूप अनूप जस, तुम देखिउ कुरु वीर।
सम्भव नहिं नर लोक महं, देखि सकहिं जे धीर॥

हे अर्जुन ! सुनो जैसा तुमने यह मेरा अनुपम स्वरूप देखा है, ऐसे स्वरूप का दर्शन मृत्युलोक में किसी भी धीरजवान पुरुष को होना संभव नहीं है।

वेद पठन तप योग जप, दान कर्म बहुभाय।
नहिं दीखहि मम रूप अस, कोटिन करिय उपाय॥

वेद पढ़ने, तप करने, योग करने, जप करने, अथवा अन्य अनेक कर्मों के करने से भी मेरे इस स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता चाहे कोटानकोटि उपाय किये जायँ।

घोर रूप लखि अमित प्रभाऊ॥तजहु मूढ़ता जनि घबराऊ ॥
प्रेम सहित मन भय बिसराई॥सोम्य रूप पुनि देखहु भाई ॥

हे अर्जुन ! मेरे घोर रूप को देख कर घबराओ मत मूढ़ता को छोड़ दो। हे भाई ! भय छोड़कर प्रेम सहित फिर मेरे उस सुन्दर स्वरूप को देखो।

कह संजय सुनिये महिपाला॥वासुदेव कहि वचन रसाला ॥
पुनि हरि भये सौम्य वपुधारी॥दरशायहु निज रूप मुरारी ॥

सञ्जय बोले कि हे राजन् सुनिये ऐसे प्रीति युक्त वचन कह कर फिर भगवान् ने सुन्दर रूप को धारण कर लिया और फिर उसे मानवी रूप का दर्शन दिया।

सभय रहा अर्जुन धनुधारी॥तिहि परितोष कीन्ह वनवारी ॥
अर्जुन कह हरि सौम्य अपारा॥मानुष वपु यह देखि तुम्हारा ॥
अब मैं भयऊ सचेत बहोरी॥निज स्वभाव गत भई मति मोरी॥

धनुर्धर अर्जुन जो डरा हुआ था श्रीकृष्णजी ने उसको सन्तोष दिया। अर्जुन बोला कि हे भगवान् ! यह आपका अत्यन्त सुन्दर मानुषी स्वरूप देख कर अब मैं फिर से सचेत हुआ हूँ, और मेरी बुद्धि अपने स्वभाव में स्थिति हुई है।

हरि बोले तुम देखिउ जैसा॥मम दुर्दश स्वरूप सु तैसा ॥
देवहु करहिं सदा अभिलाषा॥लखन चहहिं मम विश्व प्रकाशा॥

भगवान् बोले कि तुमने जैसा मेरा यह दुर्दश स्वरूप देखा है, वैसा स्वरूप देखने की देवता भी सदा कामना करते हैं।

वेद यज्ञ तप दान बल, सम्भव नहिं जो कोय ।
देखि सकहिं ममरूप अस, दीखि परिउ जस तोय ॥

वेद, यज्ञ, तप, और दान के बल से भी किसी को मेरा ऐसा रूप दीखना सम्भव नहीं जैसा कि तुमने देखा है।

अनन्य भक्ति बल एक यह, सम्भव विश्व स्वरूप।
दर्शन ज्ञान प्रवेश हू, होय यथारथ रूप॥

केवल एक अनन्य भक्ति के प्रभाव से विश्वरूप का दर्शन होना, उसका ज्ञान होना, तथा यथार्थ रूप से उसमें प्रवेश होना सम्भव है।

अर्पि कर्म फल भक्त मुहि, परम ईष्ट पहिचान।
राग द्वेष कर लेश तजि, सहज मिलहिं मोहि आन॥

मेरा भक्त मुझको अपना परम ईष्ट मान कर और कर्मों के फल को मेरे अर्पण करके तथा राग और द्वेष को त्याग कर सहज ही मुझको आ मिलता है।

इति एकादश अध्याय।

अथ द्वादश अध्याय

अर्जुन उवाच

एक भक्त प्रभु प्रेम सन, सदा भजहिं इमि जौन।
एक अक्षर अव्यक्त रत, इन महँ युक्त सु कौन॥

अर्जुन इस आशय को मन में रख कर कि सगुण उपासना श्रेष्ठ है अथवा निर्गुण उपासना श्रेष्ठ है पूछता है कि हे भगवन्! एक भक्त तो आप के वे हैं जो सदा प्रेम से आपका भजन करते रहते हैं और एक भक्त आप के वे हैं जो आप की अप्रकट अविनाशी गति में लगे हुए हैं इन दोनों में श्रेष्ठ योगी कौन है?

गूढ़ प्रश्न जब पारथ कीन्हा*तब बोले प्रभु सुख आसीनः॥
निशिदिन सुमिरत जो मनमोही*श्रद्धा अतुलित युक्त भयोही॥
जो मम भक्त प्रेम मतवारा*सो उत्तम मोहि अधिकपियारा॥

जब अर्जुन ने यह गूढ़ प्रश्न किया तो भगवान् बोले कि जो मुझको मन से दिन रात असीम श्रद्धा से स्मरण करता है, तथा जो भक्त मेरे प्रेम में मस्त रहता है वही उत्तम और मुझ को अधिक प्यारा है।

ध्रुव अव्यक्त अचिन्त्य अनामा*व्यापक अक्षर अचल अकामा॥
तत्वरूप कूटस्थ कहावा*अस निरगुणगति जे जन ध्यावा॥
मन इन्द्रिय गननिजवशआना*सम बुद्धी सर्वत्र समाना॥
सब भूतन के हित रत जोहू*मोही कहँ पावत मुनि ओहू॥

स्थिर, अप्रकट, चिन्तन करने के अयोग्य, नाम रहित, सर्वत्र व्यापक, अविनाशी, अचल, कामना रहित, तत्व रूप जिसे कूटस्थ कहते हैं, ऐसी जो निर्गुण गति है उस की उपासना में लगे हुए मुनीश्वर भी मन और इन्द्रियों के समूह को अपने वश में लाकर सब जगह समान बुद्धि रखते हुए, सब प्राणियों के हित में लगे हुए मुझ को ही प्राप्त होते हैं।

पै जे मन अव्यक्त लगावहिं॥ते नर क्लेश कठोर उठावहिं॥
निराकार गति कठिन बखानी॥महा क्लेश सहि पावहिं प्रानी॥

परन्तु जो लोग अप्रकट (निराकार) गति में मन लगाते हैं उन को बहुत क्लेश होता है क्योंकि निराकार गति कठिन कही गई है और लोगों को बहुत कठिनाई से प्राप्त होती है।

अनन्य योग मुहि ध्यावहीं, पुनि तत्पर मुहि माहिं।
मोहि समर्पित कर्म सब, जे जन सदा कराहिं॥

जो लोग अनन्य भक्ति से मेरा ध्यान करते हैं और मुझ में ही तत्पर रहते हैं और सब कर्मों को मेरे अर्पण कर देते हैं।

जे मन लाय रहे मुहि माहीं॥ते मम भक्त अचल शक नाहीं।
तिन कर करउँ वेगि उद्धारा॥सहजहि तारौं भव निधि पारा

जो लोग अपना मन मुझ में रखते हैं, वे मेरे अचल भक्त हैं इस में कोई शक नहीं है। उनका मैं जल्दी से उद्धार करता और उनको संसार सागर से सहज ही में तार देता हूँ।

मन राखहु मोही महँ लाई॥राखहु बुद्धि मोहि प्रविशाई
इहि विधि मो महँ रहहु समाई॥या महँ नेकि न संशय भाई

मन को मुझ में ही लाकर रक्खो, बुद्धि को मुझ में ही प्रवेश करा कर रक्खो। इस प्रकार से तुम मुझ में लीन हो जाओगे इस में कोई भी संशय नहीं है।

तात लाय मन जो मुहिपाहीं*ठहरावन कहँ समरथ नाहीं ॥
तौ पुनि मो कहँ पावन हेतू*करु अभ्यास सु कुरुकुल केतू ॥

हे प्रिय अर्जुन ! यदि तुम मन को मुझ में ठहराने की सामर्थ्य नहीं रखते तो मुझ को पाने के लिये अभ्यास करो।

यदि अभ्यास न भावत तोही*तौ करि कर्म समर्पहु मोही ॥
मम हित कर्म करतहू ताता*पावहु परम सिद्धि सुख दाता ॥

यदि अभ्यास भी तुझे अच्छा नहीं लगता तो कर्मों को करके मेरे अर्पण करो, क्योंकि कर्मों को मेरे अर्पण करने से भी तू परम आनन्द के देने वाली सिद्धि को पालेगा।

जो समर्थ नहिं करन इमि, योग मोर आधार।
तौ मन वश करि कर्म फल, त्यागहु पाण्डु कुमार ॥

अर्जुन ! यदि इस प्रकार से भी कर्म योग करने के लिये तू समर्थ नहीं है तो मन को वश में लाकर कर्म फलों का त्याग करो।

अभ्यासहु ते उत्तम ज्ञाना* ज्ञानहुँ ते पर ध्यान बखाना ॥
ध्यानहुँ ते फल त्याग महाना*त्यागहि शीघ्र शान्ति प्रद माना ॥

अभ्यास करने से ज्ञान सरल है, ज्ञान से ध्यान उत्तम और सरल है, ध्यान से भी कर्मफलों का त्याग उत्तम है, त्याग ही शीघ्र शान्ति का देने वाला है।

योगी रह सन्तुष्ट सदाई*मनहिं जीति दृढ़ निश्चय लाई ॥
ममता रहित अहंता हीना*क्षमावान सुख दुख सम चीना ॥

योगी पुरुष को सदा सन्तुष्ट रहना चाहिये, मन को जीतना चाहिये और दृढ़ निश्चय रखना चाहिये। ममता और अहंकार का त्याग करना चाहिये क्षमावान् होना चाहिये तथा सुख और दुःख को समान मानना चाहिये।

सब भूतन महँ द्वेष विहीना*मैत्री करुणा युक्त प्रवीना ॥
मन बुधि अर्पहि मो कहँ जोही*सो मम भक्त अधिक प्रिय मोही ॥

आगे कहते हैं कि फिर योगी को कैसा होना चाहिये कि सब प्राणियों में द्वेष रहित होना चाहिये और मित्रता और करुणा से युक्त होना चाहिये। भगवान् कहते हैं कि जो पुरुष मुझ में मन और बुद्धि को अर्पण कर देता है वह मेरा भक्त मुझ को अधिक प्यारा है।

जिहि सन लोक व्यथित नहिं होई * लोकहु सन पुनि व्यथित न सोई॥
हर्ष शोक भय उर नहिं थोरा * सो मम भक्त अधिक प्रिय मोरा॥

जिससे संसार को उद्वेग नहीं होता है, और जिस को संसार से उद्वेग नहीं होता है जिस के अन्दर हर्ष, शोक, और भय थोड़ा भी नहीं है वह मेरा भक्त मुझ को अधिक प्यारा है।

शुद्ध चतुर अनपेक्ष पुनि, उदासीन गत मोह।
सर्वारम्भन त्याग ही, मोर भक्त मुहि सोह॥

जो शुद्ध चित्त है, चतुर और बेलौस है जिस का मोह नष्ट हो गया है, जो सब वस्तुओं में उदासीन है जिसने सब आरम्भों का त्याग कर दिया है ऐसा मेरा भक्त मुझे प्यारा लगता है।

राग द्वेष कछु मनहिं न लावा * इच्छा शोक न जाहि सतावा॥
पुनि शुभ और अशुभ दुहुं त्यागा * भक्ति प्रधान मोहि प्रिय लागा॥

जिस के मन में राग और द्वेष कुछ नहीं है, इच्छा और शोक जिस को नहीं सताते, जिसने भला और बुरा दोनों का त्याग किया है और जिस में भक्ति की प्रधानता है वह मुझको प्यारा है।

जिन कहँ वैरी मीत समाना * सम ही तथा मान अपमाना
शीत उष्ण सुख दुख सम माना * संग दोष कछु मनहिं न आन

जिसका शत्रु और मित्र समान है, जिसका मान और अपमान समान है, तथा सर्दी, गरमी, सुख और दुःख भी समान

हैं और जिसके मन में संग दोष अर्थात् सांसारिक पदार्थों में आसक्ति नहीं है। (आगे कहते हैं)

निन्दा अस्तुति एक समाना * मौनी परम तोष उर आना॥
अस्थिर मति पुनि रहित निकेता*सो जन प्रिय मुहि भक्ति समेता॥

जिसको निन्दा और स्तुति एक समान मालूम होती है, जो मौनी तथा परम सन्तोष वाला है (जो कुछ मिले उसी में सन्तुष्ट रहे) जिसकी बुद्धि स्थिर है जिसका घर कहीं नहीं है, ऐसा भक्ति युक्त पुरुष मुझे प्यारा लगता है।

पै जो धर्म सुधा यह भाई * सेवहि जिहि विधि कहा बुझाई॥
श्रद्धा युत रहि मोर अधारा * भक्त मोर सो अधिक पियारा॥

किन्तु जो इस धर्म रूपी अमृत का सेवन जिस प्रकार कहा गया है उसी प्रकार श्रद्धा पूर्वक मेरे आधार रह कर करता है वह भक्त मुझे अधिक प्यारा है।

भक्ति योग वरणन कियो, श्रीकृष्ण भगवान।
पढ़हि सुनहि जो प्रेम सन, पावहि भक्ति महान॥

श्रीकृष्णभगवान् ने यह भक्ति योग कहा है जो चतुर पुरुष इसको पढ़ते और सुनते हैं उनको भक्ति प्राप्त होती है।

इति द्वादश अध्याय।
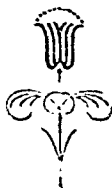
❀ अथ त्रयोदश अध्याय ❀

श्रीभगवान् उवाच

कह संजय राजन सुनिय, तब पुनि हरि भगवान।
ज्ञान क्षेत्र क्षेत्रज्ञ कर, लागे करन बखान॥

सञ्जय बोला कि हे राजन्! सुनिये तब फिर हरि भगवान् क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान कथन करने लगे।

क्षेत्र देह क्षेत्रज्ञ तिमि, क्षेत्रहि जनन हार।
गहन विषय यह तात शृणु, ज्ञानिन कीन्ह विचार॥

शरीर को क्षेत्र कहते हैं, और क्षेत्र को जानने वाले को क्षेत्रज्ञ कहते हैं, हे प्रिय अर्जुन! यह विषय गूढ़ है, इसका विचार ज्ञानी लोगों ने किया है।

सब क्षेत्रन महँ सम आसीना * अहउँ तात क्षेत्रज्ञ प्रवीना॥
ज्ञान क्षेत्र क्षेत्रज्ञ प्रमानू * सो मैं निज मति करत बखानू॥

सब क्षेत्र रूप शरीरों में एक समान ठहरा हुआ क्षेत्रज्ञ अर्थात् क्षेत्र का जानने वाला मुझ को जानो। यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान जो प्रमाणों से सिद्ध है, मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन करता हूँ।

कहा क्षेत्र अरु कवन विकारा * कहाँ भयउ पुनि कवन प्रकारा।
कह क्षेत्रज्ञ सु कवन प्रभाऊ * अब संक्षेप तोहि समुझाऊ॥

क्षेत्र क्या है? क्षेत्र के विकार क्या हैं? क्षेत्र कहाँ और कैसे पैदा हुआ है? तथा क्षेत्रज्ञ क्या है? और क्षेत्रज्ञ का क्या प्रभाव है? यह सब बात संक्षेप से तुझे समझाता हूँ।

शृणु यह ज्ञान ऋषिन बहु भाखा * छन्दन महँ बहु विधि कहि राखा॥
ब्रह्म सूत्र महँ निश्चय कीना * हेतु सहित मुनि व्यास प्रवीना॥

सुनो यह क्षेत्र क्षत्रज्ञ का ज्ञान ऋषियों ने बहुत तरह से वर्णन किया है और छन्दों में भी बहुत तरह कहा है; तथा व्यासदेवजी ने इस ज्ञान का निर्णय हेतुओं सहित अपने बनाये ब्रह्म सूत्र अर्थात् वेदान्त दर्शन में किया है।

बुधि अव्यक्त भूत हंकारा * दश इन्द्रिय इक मनहि सम्हारा॥
पंच विषय इन्द्रिन कर ताता * चाह द्वेष सुख दुख संघाता॥
सहित चेतना धैर्य सुजाना * क्षेत्र यहै सविकार बखाना॥

अब विकारो सहित क्षेत्र को बताते हैं कि बुद्धि, प्रकृति, पंचभूत, अहंकार, दश इन्द्रियाँ, मन, इन्द्रियों के पांच विषय, इच्छा द्वेष, सुख, दुख, चैतन्यता, धैर्य यह सब मिलकर क्षेत्र और उस के विकार हैं।

अब विस्तार सुनहु प्रिय ज्ञाना * कहन लगे हरि ज्ञान निधाना॥

तब परम ज्ञानी श्रीकृष्णजी कहने लगे कि अब तुम विस्तार पूर्वक ज्ञान का वर्णन सुनो।

दम्भ मान हिंसा नहीं, क्षमनो सरल स्वभाव।
निश्चल मन शुचि स्ववश रखि, गुरु सेवा चित चाव॥

दम्भ, अहंकार, पर पीड़न मन में न हो, सरल स्वभाव हो, क्षमा हो, मन में पवित्रता हो, चञ्चलता न हो, तथा मन अपने वश में हो, चित्त में गुरु सेवा करने का उत्साह हो।

इन्द्रिय विषयन माहिं विरागा * अहंकार कर पूरण त्यागा ॥
जन्मन मरण जरा अरु व्याधी * लखत इनहिं दुख रूप उपाधी॥

इन्द्रियों के विषयों में वैराग्य हो, अभिमान का पूरा त्याग हो, जन्म,मृत्यु, बुढ़पा और रोगों को दुःख देने वाली उपाधी रूप समझे।

सुत दारा गृह आदिक माहीं * उदासीन वत रहि रत नाहीं ॥
चित समता युत रहइ सदाई * चिन्ता इष्ट अनीष्ट दुराई ॥

पुत्र, स्त्री, घर वगैरा में प्रीति को त्याग कर उदासीन के समान रहे। चित्त में समता को धारण करे तथा इष्ट और अनीष्ट की चिन्ता का त्याग करे।

एक भाव मुहि भजहि सप्रेमा * अविचल भक्ति धारि दृढ़ नेमा॥
जन समूह महँ प्रीति दुराई * देश इकन्त रहइ अधिकाई ॥

अचल भक्ति और दृढ़ नियम पूर्वक प्रेम सहित एक भाव में मेरा भजन करे, तथा मनुष्यों में प्रीति को दूर कर के अधिक तर एकान्तवास करे।

लीन सदा अध्यातम विचारा * तत्व रूप दरशन आधारा ॥
ज्ञान कहा यह वेद प्रमाना * इह विपरीत जानु अज्ञाना ॥

तत्व रूप के साक्षात्कार करने के आश्रित रह कर सदा आत्म-चिन्तन में लगा रहे। इतनी बातों को वेद के अनुसार ज्ञान समझना चाहिये तथा जो इस से उलटा हो वह अज्ञान समझना चाहिये।

अब जिहिं जाने मुक्ति पद, मिलहि कहुँ सो ज्ञेय।
जो अनादि सदसद परे, पार ब्रह्म पर धेय ॥

अब जिस के जानने से मुक्ति प्राप्त होती है, उस परमेश्वर

अर्थात् जानने योग्य वस्तु को कहता हूँ वह ध्येय अर्थात् ध्यान करने योग्य परब्रह्म अनादि तथा सत और असत से परे है।

ता प्रभु के कर पद चहुँ ओरी॥ सब दिशि शिर मुख नयन बहोरी ॥
नासा करण सु इन्द्रिय नाना * व्यापक करि ठहरिउ भगवाना॥

उस परमेश्वर के हाथ और पैर चारों तरफ़ हैं, उसके शिर, मुख, नेत्र सब दिशाओं में हैं वह अपनी नाक, कान तथा नाना इन्द्रियों को सब जगह व्यापक कर के ठहरा हुआ है।

इन्द्रिय रहित आप अविनाशी * पै इन्द्रिन कर स्वयम प्रकाशी॥
सब सन मिलिउ तदपि प्रभु न्यारा॥ निरगुण हू गुण भोगन हारा ॥

वह अविनाशी इन्द्रियों से रहित है, परन्तु स्वयं इन्द्रियों का प्रकाश करने वाला है, अर्थात् उस के बिना इन्द्रियां अपने कार्यों को नहीं कर सकतीं; वह प्रभु सब से मिला भी है, और अलग भी है, निरगुण होकर भी गुणों का भोगने वाला है।

सो भूतन के बाहिर अन्तर * अचल रूप पर चलत निरन्तर॥
सो अति निकट बहुत पुनि दूरी॥ समुझि परत नहि सूक्ष्म भूरी ॥

वह प्रभु प्राणियों के बाहर भी है, भीतर भी है, अचल है, तो भी चलता रहता है, वह बहुत निकट भी है, और बहुत दूर भी है, वह अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण समझ में नहीं आता।

सो अविभक्त एक गति गहरा * भूतन महँ विभक्त इव ठहरा ॥
भूतन कर सो आदि विधाता * पालि पोषि सहांरहि ताता ॥

वह एक गति गहन और बिना बटा हुआ होने पर भी प्राणियों में बटे हुए के समान ठहरा हुआ प्रतीत होता है। वह प्राणियों का आदि निर्माण करने वाला, पालन पोषण करने वाला, और नाश करने वाला है।

सब जोतिनहि प्रकाशित करई * अन्धकार पर सो तम हरई ॥
ज्ञान स्वरूप ज्ञेय सुख राशी * ज्ञान गम्य प्रभु सब उर वासी ॥

वह परब्रह्म सब ज्योतियों अर्थात् चाँद, सूरज वग़ैरः को प्रकाशित करता है। तथा वह परब्रह्म अन्धकार से परे और अन्धकार का नाश करने वाला है। वह ज्ञान स्वरूप है जानने योग्य है, आनन्द का भण्डार है, ज्ञान के द्वारा जाना जा सकता है तथा सब के हृदयों में मौजूद है।

ज्ञान ज्ञेय अरु क्षेत्र यह, कहा समास बुझाय।
पाय ज्ञान यह भक्त मम, सहज मिलहिं मुहि आय॥

ज्ञान, ज्ञेय, और क्षेत्र का संक्षेप से वर्णन किया, इस ज्ञान को पाकर मेरे भक्त सहज में मुझे प्राप्त होते हैं।

प्रकृति पुरुष दुहुँ अहइँ अनादी॥ कहहिं वेद तिमि आतम वादी॥
जे कछु शृणु गुण दोष विकारा॥ ते सब सम्भव प्रकृति अधारा॥

प्रकृति और पुरुष दोनों अनादी हैं, ऐसा वेद तथा आत्म-ज्ञानी लोग कहते हैं, और सुनो जो कुछ गुण, दोष और विकार हैं वे सब प्रकृति के आधार से उत्पन्न होते हैं।

कारण कारज हेतु प्रधाना॥ सुख दुख भोगन हेतु पुमाना॥
प्रकृति टिका यह पुरुष पुराना॥ प्रकृति केर गुण भोगत नाना॥

कारण और कार्य का हेतु प्रकृति है, और सुख दुःख भोगने का हेतु पुरुष है। यह प्राचीन पुरुष प्रकृति में ठहर हुआ प्रकृति के नाना गुणों का भोग करता है।

जन्म हेतु गुण संग कहाईं॥ सदसद् योनिन जीव भ्रमाईं॥
उत्तम पुरुष रहत तनु एही॥ मुनि जन कह परमातम तेही॥

प्रकृति के गुणों से संग होना जन्म का कारण है, जिससे भली और बुरी योनियों में जीव भ्रमण करता रहता है। यह उत्तम पुरुष भी जिसको मुनीश्वर लोग परमात्मा कहते हैं इसी शरीर में रहता है।

सो द्रष्टा भरता अनुमन्ता * भोगन हार सु पुनि भगवन्ता ॥

वह पुरुष देखने वाला साक्षी है, पोषण करने वाला है, राय देने वाला है, भोगने वाला है, और भगवान् है।

गुण युत पुरुष प्रकृत कर ज्ञाना*जो इह भाँति भली विधि जाना ॥
नाना कर्म करत हू ओही * पुनरजन्म दुख बहुरि न होई ॥

यह गुणों सहित प्रकृति और पुरुष का ज्ञान जो इस तरह से भली भाँति जानता है वह नाना प्रकार के कर्मों को करता हुआ भी पुनर्जन्म रूप दुःख को फिर नहीं प्राप्त होता।

केचित निज मन ध्यान धरि, आतम दर्शन लीन।
सांख्य योग वा कर्म कहँ, केचित गहइँ प्रवीन ॥

भगवान् कहते हैं कि इस आत्म प्राप्ति के लिये कोई तो ध्यानावस्थित होकर आतम-दर्शन में लीन होजाते हैं, कोई चतुर पुरुष ज्ञान योग और कोई कर्म योग को ग्रहण करते हैं।

अपर सरल मति कछू न जाना * औरन सन सुनि भजहिं सयाना॥
तेउ जाँय तरि भव निधिपारा* श्रवण परायण परम उदारा ॥

कोई सीधे साधे लोग जो कुछ नहीं जानते हैं, वह चतुर दूसरों से सुन-सुनाकर ही भगवान् का भजन करते हैं। वे श्रवण परायण लोग भी परम उदार हैं और संसार सागर से तर जाते हैं।

भये क्षेत्र क्षेत्रज्ञ मिलापू * सब जड़ जंगम उपजहि आपू ॥
उक्त योग बिनु भये यथारथ* उपजि सकत नहिं किमपि पदारथ॥

संसार के सब जड़ और चैतन्य पदार्थ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्रकृति और पुरुष के संयोग से उत्पन्न होते हैं। प्रकृति और पुरुष का संयोग हुए विना कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हो सकता।

परम तत्व परमेश बखाना * सब भूतन महँ रहिउ समाना ॥
क्षरन माहिं अक्षरहि निहारत * लखत यथारथ रूप सु भारत ॥

जिस परम तत्व को परमेश्वर कहते हैं वह सब प्राणियों में एक समान ठहरा हुआ है। जो लोग क्षर अर्थात् नाशवान् वस्तुओं में अक्षर को अर्थात् अविनाशी परमात्मा को देखते हैं, हे अर्जुन! वेही लोग यथार्थ में देखने वाले हैं।

देखत जो सर्वत्र समाना * सम व्यापक सब महँ भगवाना ॥
नहिं अपघात करत मुनि जेई * परम गती मुनि पावहिं तेई ॥

जो लोग भगवान् को सबमें सब जगह एक समान ही व्यापक देखते है, तथा जो लोग आत्मघात (अर्थात् आत्म की अवनति) नहीं करते वेही मुनि लोग परम गति रूप मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

कर्म होहिं सब प्रकृति अधारा * श्रुति प्रमाण मुनि कीन्ह विचारा॥
आत्मा किमपि न करता होई * जो इमि देखत देखत सोई ॥

सब कर्म प्रकृति के आधार से होते हैं इसमें वेद भी प्रमाण हैं और मुनीश्वरों ने इसका ऐसा ही विचार पूर्वक निश्चय किया है। ऐसा समझ कर जो आत्मा को कर्मों का करने वाला नहीं देखता है वही ठीक देखता है।

एक ब्रह्म मय देखई, नाना भूतन रूप।
ब्रह्महि सन विस्तार सब, लखहि सु ब्रह्मस्वरूप ॥

जो पुरुष नाना भूतों को एक ब्रह्म रूप देखता है और ब्रह्म ही से सब के फैलाव को देखता है वह स्वयं भी ब्रह्म स्वरूप ही है।

निर्विकार परमेश्वर भाई * निमि अनादि निरगुण कहलाई ॥
रहत शरीरन महँ पुनि सोई * नहिं कछु करत न लिपहु होई ॥

वह परमेश्वर जो अनादि निर्गुण और निर्विकार कहलाता है, वही शरीरों में रहता हुआ भी न कुछ करता है न लिप्त होता है।

आत्मा रहि शरीर पुर माहीं * लिप्त होत कर्मन इमि नाहीं ॥
जिमि अकाश व्यापिउ सब ठाईं * नहिं सूक्ष्मता हेतु लिपाई ॥
एक भानु सब जग तम नाशहि * तिमि क्षेत्रनि क्षेत्रज्ञ प्रकाशहि ॥

इस शरीर रूप नगर में रहा हुआ आत्मा कर्मों से इस प्रकार लिप्त नहीं होता जैसे सब जगह व्यापक आकाश अपनी सूक्ष्मता के कारण किसी पदार्थ से लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार एक सूर्य सारे संसार के अंधेरे को दूर कर देता है इसी प्रकार क्षेत्र को क्षेत्रज्ञ प्रकाशित करता है अर्थात् एक ही आत्मा सारे शरीर को प्रकाशित करता है।

भेद क्षेत्र क्षेत्रज्ञ कर, भूतन मोक्ष उपाय।
ज्ञान चक्षु जे लखहिं ते, पुरुप परम्पद पाँय ॥

क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का भेद समझना मोक्ष का एक उपाय है, ज्ञान चक्षुओं से जो लोग इस भेद को देखते हैं वे परम पद को प्राप्त होते हैं।

इति त्रयोदश अध्याय।

अथ चतुर्दशोध्याय

भगवान् उवाच

सर्वोत्तम यह ज्ञान सो, बहुरि कहउँ समुझाय।
मुनि जन जाकहँ जानि के, गये परम्पद पाय॥

भगवान् कहने लगे कि यह सबसे श्रेष्ठ ज्ञान मैं फिर तुमको समझा कर कहता हूं, यह ज्ञान पाकर मुनि लोग मोक्ष को प्राप्त हुए हैं।

केवल यहै ज्ञान उर आनी * मम साधर्म्य लहत विज्ञानी॥
सृष्टि भये ते जन्म न पावहिं * प्रलय काल नहिं बहुरि नशावहिं॥

केवल इस ज्ञान को मन में धारण करके अनुभवी लोग मेरे साधर्म्य को अर्थात् ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होता है। उसको सृष्टि की आदि में जन्म नहीं लेना होता और प्रलय होने पर वह नाश को प्राप्त नहीं होता।

तात प्रकृति मम योनि समाना * जा महँ गर्भ धरउँ विधि नाना॥
उपजहिं भूत जहां लगि जेही * सब कर कारण जानहु एही॥

हे अर्जुन! प्रकृति मेरी योनि के समान है, उस प्रकृति रूप योनि में मैं तरह तरह के गर्भों को धारण करता हूँ, जितने प्राणी उत्पन्न होते हैं उन सबका कारण प्रकृति को समझो।

सब योनिन महँ जन्मत आई * जे कछु जीव जहां लगि भाई॥
तिन कहँ प्रकृति योनि जिम माता * पितु समान मैं बीज प्रदाता॥

सर्व योनियों में जो कुछ जहां तक जीव उत्पन्न होते हैं, उनके लिये प्रकृति रूप योनि माता के समान है, और बीज का आरोपण करने वाला मैं पिता के समान हूं।

प्रकृति केर गुण तीन प्रधाना * सत रज तम पुनि नाम वखाना॥
रहत शरीर जीव अविनाशी * ताकहँ त्रय गुण बन्धन पाशी॥

प्रकृति के तीन मुख्य गुण हैं, जिनका नाम सत, रज, और तम है। शरीर में जो अविनाशी जीव रहता है उसके लिये यह तीनों गुण बाँधने के लिये फाँसी रूप हैं।

सत निरदोष प्रकाशक माना * तदपि सु बन्धन हेतु सुजाना॥
सो निरमलता हेतु प्रधाना * जीवहि बाँधत सह सुख ज्ञाना॥

सतोगुण दोषों से रहित है और प्रकाश करने वाला है, तो भी वह बन्धन का हेतु कहा गया है, वह निर्मलता के कारण तीनों गुणों में प्रधान है और जीव को सुख और ज्ञान के द्वारा बाँधता है।

रज रागात्मक जानहू, उपजहि तृष्णा संग।
कर्म संग सो बाँधई, अर्जुन जीवहि अंग॥

रजोगुण को राग वा प्रीति रूप समझो वह तृष्णा के साथ उत्पन्न होता है, और हे अर्जुन! वह जीव को शरीर में कर्म के साथ बाँधता है अर्थात् नाना कर्मों में प्रेरित करता है।

तम उपजहि अज्ञान ते, मोहइ जीव अशेष।
आलस नींद प्रमाद बल, वन्धन करहि विशेष॥

तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है, और सम्पूर्ण जीवों को मोहित करता है, यह जीव को आलस्य, निद्रा, और प्रमाद के द्वारा विशेष बन्धन करता है।

सत सुख माहिं लगावत जीवहि॥ तिमिरज कर्मन माहिं अतीवहि॥
करि आवरण ज्ञान कहँ भाई ॥ तम प्रमाद युत करहि सदाई॥

जब सतोगुण उत्पन्न होता है तो जीव को सुख का अनुभव होता है, जब रजोगुण उत्पन्न होता है, तब नाना प्रकार के कर्मों को करने में यह पुरुष लग जाता है और जब तमोगुण उत्पन्न होता है तो वह ज्ञान को ढक कर शरीर में आलस्य और प्रमाद को उत्पन्न कर देता है।

रज तम जीति सत्व अधिकाई ॥ तिमि रज हू सत तमहि दबाई॥
तम बाढ़इ तिमि सत रज जीती॥ तात सुनहु यह अविचल नीती॥

सतोगुण रजोगुण और तमोगुण को दबा कर बढ़ता है। रज, सत और तम को दब कर बढ़ता है, और तम, सत और रज को दबा कर बढ़ता है अर्थात् एक गुण की प्रधानता के समय और दोनों गुण दब जाते हैं, यह अटल नियम है।

अवरहु भेद कहहुँ तुहि पाँही ॥ जब शरीर मन इन्द्रिन माहीं॥
ज्ञान प्रकाश होय अति गाढ़ा ॥ जानहुँ तबहिं सतोगुण बाढ़ा॥

भगवान् कहने लगे कि और भी भेद में तुझे बताता हूं कि जब शरीर मन और इन्द्रियों में ज्ञान का प्रकाश हो तब जानो कि सतोगुण बढ़ा है।

लोभ प्रवृति आरम्भ अनेका ॥ इच्छा अशम न मन कहँ टेका॥
जब यह दशा होय मन आई ॥ तब जानहुँ रज कर अधिकाई॥

जब मनमें लोभ प्रवृत्ति इच्छा अशान्ति और नाना कर्मों के आरम्भ करने की जी चाहे तथा मन एकाग्र होकर ठहरे नहीं ऐसी दशा प्राप्त होने पर समझना चाहिये कि रजोगुण की अधिकता हुई है।

प्रवृति रहित मन पुनि अज्ञाना ॥ उपजहि मोह प्रमाद महाना॥
जब मनमहँ उपजहि अस भावा॥ तब जानहुँ तम आइ दबावा॥

जब मन में अज्ञान हो और किसी काम के करने को जी न चाहे तथा मोह और आलस प्रमाद की अधिकता हो, तब समझना चाहिये कि शरीर में तमोगुण बढ़ा है।

सत बाढ़े जो तन तजै, सो पावइ शुभ लोक।
पुण्यवान जन जाय जहँ, भोगहिं भोग विशोक॥

सतोगुण की अधिकता के समय यदि शरीर छूटे तो वह पुरुष उन उत्तम शुभलोकों को जाता है, जहाँ पुण्यवान् पुरुष जाकर शोक रहित सुखों को भोगते हैं।

रज प्रधानता तन तजे, कर्मिन संग सु जाय।
तम बाढ़े तनु त्याग जो, मूढ़ योनि सो पाय॥

रजोगुण की प्रधानता में शरीर छूटने पर मनुष्य का जन्म-कर्म करने वाले पुरुष के यहां होता है। और तमोगुण की प्रधानता में शरीर छूटने से जो अज्ञान की अधिकता वाली योनियाँ हैं, जैसे साँप, कीट इत्यादि इनमें जन्म पाता है।

शुभ कर्मन कर फल सुखदाई * सात्विक तिमि मल रहित सदाई॥
फल दुख रूप रजोगुण केरा * तम कर फल अज्ञान अँधेरा॥

अच्छे कामों का फल सतोगुणी और सुख देने वाला तथा मलीनता से रहित होता है, रजोगुण का फल दुखदाई होता है, और तमोगुण का फल अज्ञान और अन्धकार रूप होता है।

उपजहि ज्ञान सतोगुण पाये * लालच काम क्रोध रज जाये॥
उपजावहि तिमि तम बलवाना * मोह प्रमाद नींद अज्ञाना॥

सतोगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से लोभ, इच्छा, क्रोध, उत्पन्न होते हैं। और तमोगुण से आलस्य, मोह, नींद, और जड़ता उत्पन्न होती है।

सतोगुणी जन ऊपर जाहीं * रजोगुणी बीचहि ठहराहीं॥
अधोगती तामस जन काँहीं * जे अहँ निरत अधम गुणमाहीं॥

सतोगुणी ऊपर को जाते हैं, रजोगुणी बीच में रहते हैं और तमोगुणी जो निकृष्ट गुण में लगे हुए हैं, नीचे को जाते हैं।

करता अपर न गुणन विहाई * द्रष्टा जब यह भेद लखाई॥
गुणन परे पुनि निज कहँ जानी * मम सारूप्य लहत तब ज्ञानी॥

जब द्रष्टा अर्थात् देखने वाला इस भेद को पहिचानता है कि गुणों को छोड़ कर करने वाला और कोई नहीं है, तथा अपने आपको गुणों से परे अकर्त्ता, अभोक्ता समझता है, तब वह ज्ञानी पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

भये शरीर प्रकट गुण तीना * जब त्यागहि यह जीव प्रवीना।
जन्मन मरण जरा दुख नाशी * लहइ अमर पद तब अविनाशी।

जब यह चतुर जीव शरीर में उत्पन्न होने वाले तीनों गुणों का त्याग कर देता है, तब जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, और दुःखों का नाश करके अविनाशी मोक्ष रूप अमृत पद को प्राप्त होता है।

कह अर्जुन कर जोरि युग, सुनिये कृष्ण सुजान।
एक बात कहु नाथ मुहि, जिमि नाशइ अज्ञान॥

तब अर्जुन हाथ जोड़ कर कहने लगा कि हे कृष्णजी ! मुझे एक बात बतलाइये जिसमें मेरा अज्ञान नाश हो।

गुणातीत कर चिन्ह जे, कहहु मोहि विस्तार।
किमि सो त्रय गुण लंघइ, किमि पुनि करइ अचार॥

अर्जुन ने पूछा कि गुणातीत के लक्षण क्या हैं ? यह विस्तार पूर्वक आप मुझे बतलाइये। गुणातीत किस प्रकार गुणों को लाँघ जाता है, और गुणों से अलग होने पर उसका आचार व्यवहार किस प्रकार होता है।

तब व्रजराज मुदित मन वोले * सुधा समान वचन अनमोले ॥
तात प्रश्न तुम कीन्हिउ नीका * सुनहुँ जाय जिमि संशय जीका ॥

तब श्रीकृष्णजी प्रसन्न होकर अमृत के समान अमूल्य वचन बोले और कहा कि हे तात ! तुमने यह प्रश्न बहुत अच्छा किया है, अब सुनो जिसमें तुम्हारी शंका नष्ट हो ।

त्रय गुण महँ गुण वरतै कोई * मोह प्रकाश प्रवृति किन होई ॥
गुण प्रकटे मन होइ न द्वेषा * लीन भये नहिं चाह विशेषा ॥

तीनों गुणों में कोई गुण वरते, चाहे मोह, आलस्य रूप तमोगुण हो, चाहे प्रकाश रूप सतोगुण हो, चाहे प्रवृत्ति रूप रजोगुण हो, इन गुणों की उत्पत्तिकाल में उस गुण से न तो द्वेष हो न उस गुण के निवृत्त हो जाने पर उस गुण की इच्छा ही हो ।

उदासीन वत सो आसीना * अविचल रहि गुणमाहिं अलीना ॥
गुण वर्तहिं अस मन महँ जाना * अस्थिर रहि नहिं तनिक डुलाना ॥

गुणों में उदासीन के समान स्थित रहे, उनसे लिप्त और चलायमान न हो, अपने मन में यह समझ कर कि गुण गुणों में वर्तते हैं, मैं कर्ता, भोक्ता कुछ नहीं हूँ, स्थिर रह चंचल वृत्ति न करे ।

स्वस्थ भयउ सम सुख दुख माना * माँटी पाहन कनक समाना ॥
निज निन्दा अस्तुति सम मानहिं * प्रिय अरु अप्रिय एक समानहिं ॥

अपने स्वरूप में टिका हुआ सुख और दुःख को समान मानने वाला मिट्टी, पत्थर, और सोने को समान ही मानने वाला अपनी निन्दा और वड़ाई में एक समान रहने वाला, तथा इष्ट वस्तु और अनिष्ट वस्तु को एकसा समझने वाला—

तुल्यहि मान मान अपमाना * वैरी मीत तुल्य उर आना ॥
सब आरम्भन कर सो त्यागी * गुणातीत कहियत वड़ भागी ॥

अपने मान और अपमान को समान मानने वाला, शत्रु

और मित्र में एक समान दृष्टि वाला। सर्व आरम्भों को त्यागन वाला ऐसा जो बड़भागी पुरुष है वही गुणातीत कहलाता है।

ऐक भक्ति जो सेवई, मो कहँ अति अनुराग।
ब्रह्म रूप के योग्य सो, तीन गुणन कहँ त्याग॥

जो बड़े प्रेम से तथा अनन्य भाव से मेरा भजन करता है वह ही तीनों गुणों को त्याग कर ब्रह्म रूप होने के योग्य है।

धर्म सनातन की धुरी, मैं आनन्द निधान।
निर्विकार अज ब्रह्म कर, मैं पुनि आद्यस्थान॥

मैं ही सनातनधर्म की धुरी अर्थात् आधार हूँ, मैं आनन्द का खज़ाना हूँ। और अनादि विकार रहित ब्रह्म का मैं — स्वरूप हूँ।

इति चतुर्दशोध्याय।

अथ पञ्चदशोध्याय

श्री भगवान् उवाच

ऊपर जर नीचे डगर, छंदन के पुनि पात।
जे जानहिं ते ब्रह्म वित, जग पीपर सम तात॥

इस संसार रूप पीपल के पेड़ की जड़ ऊपर है, और डालें नीचे हैं, छंद ही इस के पत्तों के समान हैं, जो लोग इस भेद को समझते हैं वे ब्रह्म के जानने वाले हैं।

अध ऊरध प्रसरीं सब शाखा॥गुणन बढ़ी अनगिनतिन लाखा॥
विषयन की कोपर पुनि आई॥नीचे मूल बढ़ीं बहुताई॥

सारी शाखायें उस पेड़ की नीचे और ऊपर फैली हुई हैं, और गुणों करके वह शाखाएं लाखों अनगिन्ती हो गई हैं। उन शाखाओं पर विषय रूप कोंपल लगी है, और जड़ें नीचे की तरफ़ बहुतायत से बढ़ी हुई हैं।

कर्म मूल नर लोक अनेका॥अर्जुन फँसीं एक महँ एका॥
आदि न अन्त न मध्य स्वरूपा॥समुझि परत नहिं तरूवर रूपा॥

वह कर्म रूप जड़ें संसार में एक में एक फंस रही हैं, इस पेड़ का आदि अन्त तथा मध्य नहीं दीखता, तथा इसका स्वरूप समझने में नहीं आता।

गहरो जड़न सुदृढ़ तरु लागा॥गहि काटहु धरि खड्ग विरागा॥
तब ढूंढहु सो पद मन लाई॥जहाँ जाय पुनि लौटत नाई॥

यह मजबूत पेड़ बड़ी गहरी जड़ों करके स्थापित है, इस को वैराग्य रूपी खड्ग लेकर पकड़ के काट डालो। तब मन लगा कर उस पद को ढूंढो जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता।

पुरुष पुरातन जिहि आधीना*प्रसरी प्रकृति सकल प्राचीना॥
आदि पुरुष मैं शरण तुम्हारी*परम भाव अस मन महँ धारी॥

उस प्राचीन पुरुष को ढूंढो जिसके आधीन सर्व प्राचीन प्रवृत्ति फैली हुई है। अपने मन में ऐसे भाव को धारण करो कि 'हे आदि पुरुष! मैं आप की शरण हूँ।'

संग दोष नहिं मान न मोहा*आतम ज्ञान जिनहिं नित सोहा॥
सुख दुख द्वन्द्व न मन कछु कामा*लहहिं सुज्ञानी अविचल धामा॥

जिन पुरुषों को किसी पदार्थ से प्रीती नहीं है न मन में अभिमान और मोह है, तथा जिनको आत्म ज्ञान सदा अच्छा लगता है। जिनको सुख दुख रूप द्वन्द्व नहीं सताते तथा मन में कोई कामना नहीं है, वे ज्ञानी लोग अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं।

नहिं प्रकाश सक जाहि कहँ, रवि शशि पावक कोय।
जहाँ जाय लौटत नहीं, परम धाम मम सोय॥

जिसको सूरज, चाँद, और अग्नि, प्रकाश नहीं सकते तथा जहाँ जाकर लौटना नहीं होता वही मेरा परम धाम है।

मनुज लोक महँ तात, जीव सनातन अंश मम।
मन इन्द्रिय संघात, प्रकृति रहा सो कर्षई॥

हे तात संसार में सनातन जीव मेरा ही अंश है, यह जीव प्रकृति में रह कर मन और इन्द्रियों के समूह को अपनी तरफ खेंचता है।

चलहि जीव जबहीं तनु त्यागी*आन शरीरहि धारन लागी ॥
तब सो अवशि संग ले जाई*सब कछु मन इन्द्रिय समुदाई ॥
जिमि पुष्पन कर गंध सुहाई*पवन संग ले बहत सदाई ॥

जब यह जीव शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर को धारण करने के हेतु चलता है, तब सब मन और इन्द्रियों के समुदाय को अपने साथ जरूर ले जाता है। जैसे हवा फूलों की सुन्दर सुगन्धि को सदा अपने संग लेकर बहती है।

रसना घ्राण नयन तुच काना*इह ज्ञानेन्द्रि तथा मन प्राना ॥
इन सब कहँ करि निज आधीना*विषयन सेवत जीव प्रवीना ॥

जिह्वा, नाक, आंख कान, और त्वचा इस ज्ञान इन्द्रियों तथा मन और प्राणों को अपने वश रख कर चतुर जीव विषयों का सेवन करता है।

देह रहत अथवा तनु त्यागत*भोगत विषय कि गुण अनुरागत ॥
जीवहि लखत नहीं अज्ञानी*देखहिं ज्ञान नयन युत ज्ञानी ॥

देह में रहते अथवा शरीर को त्यागते हुए, विषयों को भोगते, अथवा प्रकृति के गुणों में लगे हुए, इस जीव को अज्ञानी नहीं देखते, किन्तु ज्ञानी लोग अपने ज्ञान रूपी नेत्रों से देखते हैं।

योगी योग समाधि लगावहिं * निज आतमा कर दर्शन पावहिं ॥
मूढ़ पुरुष संस्कार विहीना * यत्न करत हू पै नहिं चीना ॥

योगी लोग समाधि के द्वारा अपने अन्दर आत्म साक्षात्कार करते हैं, किन्तु संस्कार रहित अज्ञानी पुरुष यत्न करने पर भी आत्मा को नहीं पहिचानते।

दिनकर तेज नशावई, अखिल भुवन तम घोर।
शशि पावक कर तेज हू, जानहुँ सकल सु मोर॥

सूर्य का प्रकाश जो सारे संसार के अँधेरे को दूर

करता है, तथा चाँद और आग के प्रकाश को भी मेरा ही प्रकाश समझो।

निज बल तात अनूप, धारौं भूत समाय भुवि।
सोम भयउ रस रूप, तिमि ओषधि पोषन करउँ॥

हे तात! अनुपम बल से मैं पृथ्वी में समा कर भूतों को धारण करता हूँ, तथा रसात्मक जल होकर वनस्पतियों का पोषण करता हूँ।

प्राणिन के देहन महँ जाई * मैं जठराग्नि भयउ सुखदाई॥
प्राण अपान धुकनियाँ धारी * अन्न पचावहुँ चारि प्रकारी॥

प्राणियों के शरीर में मैं सुख रूप जठराग्नि हूँ, तथा प्राण और अपान की धौंकनी के द्वारा चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

मैं सबही के उर आसीना * समुझि परत नहिं ज्ञान विहीना॥
सुरति ज्ञान कर भाव अभावा * जानहुँ सो सब मोर प्रभावा॥

मैं सब ही दिलों में मौजूद हूँ किन्तु बिना ज्ञान के जाना नहीं जा सकता. स्मृति तथा ज्ञान का उत्पन्न होना और नाश होना सब मेरे ही प्रभाव से होता है।

परम वेद्य मैं वेदन द्वारा * मैं श्रुति करता जानन हारा॥
जग महँ तात पुरुष दो जानहुँ * क्षर अरु अक्षर नाम पिछानहुँ॥

मैं वेदों के द्वारा परम जानने के योग्य हूँ, मैं वेदों का उत्पन्न करने वाला तथा जानने वाला हूँ। हे तात! संसार में क्षर और अक्षर दो पुरुषों को समझो।

क्षर कहँ भूत सकल संसारा * कूटस्थहि अक्षर निरधारा॥
उत्तम पुरुष तात पुनि आना * परमातम तिहि नाम बखाना॥

सब संसार के भूत अर्थात् नाशवान पदार्थ क्षर कहलाते हैं।

और कूटस्थ को अक्षर कहते हैं। इन से भी भिन्न एक और उत्तम पुरुष है जिसको परमात्मा कहते हैं।

त्रिभुवन व्यापक सो अविनाशी * प्रति पालक ईश्वर सुख राशी॥
जिमि छर परे अछर सन उत्तम * लोक वेद कह मुहि पुरुपोत्तम॥

वह अविनाशी पुरुष तीनों भुवनों में व्यापक है, तथा आनन्द का खज़ाना सबका पालन करने वाला है। क्योंकि मैं क्षर से परे हूँ और अक्षर से उत्तम हूँ इसलिये लोक में और वेद में पुरुपोत्तम कहलाता हूँ।

मो कहँ जे ज्ञानी पुरुष, इमि पुरुपोत्तम मान।
भजहिं सदा दृढ़ भाव युत, ते नर परम सुजान॥

जो ज्ञानी पुरुष इस प्रकार मुझ को पुरुपत्तम मान कर सदा दृढ़ भक्ति से भजन करते हैं वे परम ज्ञानवान् हैं।

तुमहि कहिउ समुझाय, तात गुह्यतम भेद यह।
गूढ़ ज्ञान यह पाय, लहइ मनुज कृत कृत्यता॥

हे तात! तुम को यह अत्यन्त गोपनीय भेद समझाया है, इस गूढ़ ज्ञान को प्राप्त करके पुरुष कृत कृत्य हो जाता है।

इति पंचदशोध्याय।

अथ सोलहवाँ अध्याय

सुनहुँ किरीटी और हू, कहन लगे भगवान ।
सम्पति दैवी आसुरी, तव हित करउं बखान ॥

भगवान् कहने लगे कि हे अर्जुन ! और सुनो तुम्हारे लिये मैं दैवी और आसुरी सम्पत्ति का वर्णन करता हूँ ।

निरमल चित उर भय नहिं लेशा * ज्ञान योग महँ प्रवृति विशेषा ॥
वेद पठन शम दम तप दाना * सरल स्वभाव यज्ञ उर आना ॥

चित्त की निर्मलता, भय का त्याग, ज्ञान अथवा योग में विशेष प्रवृत्ति, वेद पढ़ना, मन को शान्त रखना, इन्द्रियों को शान्त रखना, सीधा स्वभाव, यज्ञों में मन लगाना—

हिंसा क्रोध चुगलपन त्यागा * सत्य शान्ति पुनि मन वैरागा॥
नहिं लोलुपता भूतन माहीं * नम्र स्वभाव चपलता नाहीं ॥

हिंसा, क्रोध, चुगली का त्याग, सत्य, शान्ति और मन में वैराग्य का होना, नश्वर पदार्थों में लोलुप न होना, नम्र स्वभाव चंचलता रहित—

तेज क्षमा धृति शौच अद्रोहा * दया शील उर मान न मोहा ॥
दैवी सम्पति युत जन जेही * तिन उर बसत सबै गुण एही ॥

तेज, क्षमा, धीरज, पवित्रता, वैर का त्याग, दया, सुशीलता, निरभिमानता, मोह रहितता, इत्यादि यही सब गुण दैवी सम्पत्तिवान् पुरुषों में रहते हैं ।

अब गुण आसुरि सम्पति केरे * कछुक कहउँ यद्यपि बहुतेरे ॥
मन अति दम्भ दर्प अभिमाना * क्रोध कठोर वचन अज्ञाना ॥

अब कुछ आसुरी सम्पत्ति के भी गुण कहता हूँ हालाँकि बहुत हैं तो भी यहाँ थोड़े से कहे जाते हैं। मन में अत्यन्त अभिमान, दर्प, ढोंग, क्रोध, कटु वचन, अज्ञान की अधिकता होना, यह सब आसुरी सम्पत्ति के अवगुण हैं।

असुरी सम्पति बन्धन हेतू * दैवी अरु भव निधि कहँ सेतू ॥
अर्जुन शोक करहु किहि भाये * तुम पृय दैवी सम्पति जाये ॥

आसुरी सम्पत्ति बन्धन का कारण है और दैवी सम्पत्ति संसार से तरने का हेतु है। हे प्रिय अर्जुन ! तुम शोक क्यों करते हो तुम तो दैवी सम्पत्ति में उत्पन्न हुए हो।

दैवी असुरी गुणन युत, द्विविध पुरुष संसार ।
दैवी गुण बहुतक कहे, श्रणु असुरी विस्तार ॥

दो प्रकार के पुरुष संसार में होते हैं एक तो दैवी गुण युक्त, दूसरे आसुरी गुण युक्त, दैवी गुण तो बहुत कुछ कह दिये अब आसुरी गुणों का विस्तार सुनो।

आसुर पुरुष निपट मति हीना*प्रवृति निवृति कर भेद न चीना ॥
नहिं जानहिं कछु शौच अचारा * सत्य विहीन सु हीन विचारा ॥

आसुरी पुरुष बुद्धिहीन होते हैं वे प्रवृत्ति और निवृत्ति का भेद नहीं जानते, उनके अन्दर कुछ पवित्रता और आचार नहीं होता, उनमें सत्यता और विचार भी नहीं होता।

जग असत्य तिमि बिनहिं अधारा * ईश्वर बिन तिन मन निरधारा ॥
उपजिउ बहुरि परस्पर योगा * काम हेतु मानहिं ते लोगा ॥

वे लोग ऐसा विचार करते हैं कि संसार मिथ्या है, तथा ईश्वर के बिना अपने आप ही पैदा हो गया है। और वे लोग

मानते हैं कि काम के कारण परस्पर माता-पिता के संयोग होने से प्राणियों की उत्पत्ति हो जाती है (अर्थात् ईश्वर जगत् का कर्त्ता कोई नहीं)।

अस उर आनि भयंकर करमी ※ दुष्ट स्वभाव महान अधरमी ॥
जन्महिं नाश हेतु जग आई ※ ते मति मन्द जगत दुखदाई ॥

वे लोग एसे भावो को धारण कर घोर कर्मों के करने वाले होते हैं, उनका स्वभाव दुष्ट तथा बड़े अधर्मी होते हैं। वे लोग संसार में नष्ट होने के लिए जन्म लेते हैं तथा मन्द बुद्धि और संसार के वैरी हैं।

इच्छा अमित अशुचि व्रत गाढ़ा ※ दम्भ मान मद मन अति बाढ़ा॥
मोह विवश गति पंथ कठोरा ※ होहिं प्रवृत्त कर्म अति घोरा ॥

उनको इच्छायें बहुत होती हैं और वे अपवित्र गहन व्रतों को करने वाले होते हैं, उनमें ढोंग, मान, मद बहुत होता है। वे लोग अज्ञान के कारण कठोर मार्गों का अनुसरण करके भयंकर कर्मों के करने में लगते हैं।

अतिहि निमग्न अपरिमित चिन्ता ※ तजहिं न मरण काल परियंता॥
तिन कहँ परम काम उपभोगा ※ प्रमुदित मूढ़ ग्रसित भव रोगा॥

वे लोग अपार चिन्ताओं में अत्यन्त निमग्न रहते हैं, उन चिन्ताओंको मरने मरते तक नहीं छोड़ते। वे काम और भोगों ही को परम मानते हैं, इस प्रकार संसार रूप रोगमें ग्रसित वे लोग सदा ख़ुश होते हैं।

शत आशा पाशन बँधे, काम अरु क्रोध समेत ।
करि अनीति धन जोरहीं, इच्छित भोगन हेत॥

वे लोग सैकड़ों आशाओं के जाल में बँधे हुए काम और क्रोध से अनीति पूर्वक इच्छित भोगों के भोगने के लिये धन जोड़ते है।

अहो मोह महिमा बलवाना * जिहि वश मूढ़ मनोरथ ठाना ॥
काज भयउ यह पूरण आजू * कालिह पुजाउब दूसर काजू ॥

अरे ! यह मोह की लीला बड़ी बलवान् है, जिस के वश हो कर अज्ञानी नाना मनोरथों को करता है। और सोचता है कि आज यह मेरा काम पूरा होगया कल्ह दूसरा काम पूरा करूंगा।

एतिक धन अबहीं मम पासा * एतिक और मिलन की आसा ॥
यह वैरी तो भल मैं मारा * अपरहु रिपुन करउँ संहारा ॥

इतना धन अब मेरे पास है। और इतना और मिलने की आशा है। इस दुश्मन को खूब मारा अब दूसरों को भी मारडालूंगा।

मैं ईश्वर मम भोग महाना * मैं पुनि सिद्ध सुखी बलवाना ॥
मैं कुलीन धनवान सुजाना * दूसर को जग मोहि समाना ॥

और अज्ञानी एसा समझते हैं कि मैं स्वामी हूँ, नाना भोगों का भोगने वाला हूँ, मैं सिद्धि हूँ, सुखी हूँ, बलवान हूँ, कुलीन हूँ, धनवान् हूँ, ज्ञानी हूँ, संसार में मेरे समान कौन है ?

करउँ दान बहु यज्ञ अनन्दा * किमि कहु नवइ काहु कहँ बन्दा॥
भ्रमित रहइ चित इमि बहुभांती* ग्रसित सु मोह जाल दिन राती॥

मैं बहुत दान, यज्ञ, और आनन्द को करता हूँ कहो, तो यह बन्दा किसी को क्यों झुके, इस प्रकार अज्ञानी पुरुष का चित्त बहुत भ्रमित रहता है और वे लोग सदा मोह जाल में फँसे रहते हैं।

काम भोग महँ अति चित धरहीं* रौरव नरक जाय शठ परहीं ॥
निज अस्तुति रत कुटिल कठोरा* धन बल और मान मद घोरा ॥

उनका मन सदा काम और भोगों में ही रहता है वे दुष्ट रौरव नरक में गिरते हैं। उन कुटिल और कठोर लोगों को अपनी तारीफ़ अच्छी लगती है; तथा बल और इज्जत के गुरूर में चूर रहते हैं।

ते नर विधि कहँ त्यागि के, याग करहिं वहु नाम ।
मन महँ राखहिं दम्भ अति, मूढ़न कर अस काम ॥

वे लोग विधि को त्याग कर नाम मात्र के लिये वहुत से यज्ञों को करते हैं । उनके यज्ञ में ढोंग भरा रहता है, उन अज्ञानियों के काम इसी तरह के होते हैं ।

वल अरु दर्प अमित हंकारा * काम क्रोध कर वेग अपारा ॥
निज अरु अपर शरीरन माहीं * परनिन्दक मोकहँ दुरकाहीं ॥

उनके दिलों में वल और दर्प, अभिमान, काम, और क्रोध का वड़ा वेग रहता है । पराई निन्दा करने वाले वे लोग मुझ को अपने तथा औरों के शरीर में दुतकारते वा घ्रणा करते हैं ।

द्वेषी क्रूर कुटिल अज्ञानी * ऐसन अधम जगत जे प्राणी ॥
असुरी योनि अशुभ दुखदाई * तिन महँ डारउँ तिनहिं सदाई॥

ऐसे जो द्वेष करने वाले कठोर, टेढ़े, तथा अज्ञानी जगत् के लोग हैं, उन को मैं सदा आसुरी योनियों में जो अपवित्र तथा दुख देने वाली हैं फेंक देता हूं ।

श्रृणु असुरी योनिन महँ जाये * पुनि पामर मोकहँ विनु पाये ॥
घूमहिं जन्म जन्म घट योनी *शुभ गति तात कठिन पुनि होनी॥

सुनो आसुरी योनियों में उत्पन्न होने वाले मुझ को न पाकर जन्म जन्मों तक नीच योनियों में घूमा करते हैं, फिर उनकी शुभ गति होना कठिन होता है ।

काम क्रोध अरु लोभ कहाई * तीनिउ द्वार नरक कर भाई ॥
आतम विनाश करत पुनि तेई * अस जिय जानि इनहिं तजि देई॥

काम, क्रोध, और लोभ तीनों नरक के दरवाजे समझो यह आत्मा का नाश अर्थात् अवनति कराने वाले हैं, ऐसा जान कर इन तीनों को त्याग देना चाहिये ।

तीनिउँ अहइँ नरक कर द्वारा * जब नर होय इनहिं तजि न्यारा॥
आत्म श्रेय लगि करहि उपावा * सोई पुरुष परम्पद पावा ॥

यह तीनों नरक के दरवाजे हैं, जो पुरुष इनको छोड़ कर आत्म प्राप्ति के लिये उपाय करता है वही पुरुष परम्पद को पाता है।

शास्त्र विधी तजि वर्तई, निज मति के अनुसार।
ते नर सिद्धि न परम गति, लहहिं न सुख संसार॥

जो लोग शास्त्र की विधि को त्याग कर अपनी इच्छा के अनुसार चलते हैं, वे पुरुष न सिद्धि को पाते हैं, न परम गति को पाते हैं, न संसार में ही सुख पाते हैं।

याहित केवल शास्त्र ही, अनुचित उचित प्रमान।
कीन्हाँ चाहिय कर्म सब, भल गुनि शास्त्र विधान॥

इस लिये क्या उचित है? और क्या अनुचित है? इस में केवल शास्त्र ही प्रमाण है, और सब कर्मों को भले प्रकार शास्त्र कीविधि पूर्वक करना चाहिये।

इति सोलहवाँ अध्याय।

अथ सत्रहवाँ अध्याय

कह अर्जुन उपदेश तव, अति प्रिय सुधा समान ।
औरहु बूझौ प्रश्न इक, कहिये श्री भगवान ॥

अर्जुन ने कहा कि आपका उपदेश अमृत के समान प्रिय है, हे भगवन्! मैं एक और भी प्रश्न करना चाहता हूँ आप समझाइये ।

भजन करहि श्रद्धा सहित, शास्त्र विधान बिसार ।
तिन कर निष्ठा कवन प्रभु, सत रज तम अनुसार ॥

हे भगवान् जो लोग आपका भजन शास्त्र के विधान को त्याग कर श्रद्धा के साथ करते हैं, उनकी निष्ठा सतोगुण रजोगुण अथवा तमोगुण के अनुसार कैसी है ?

तात लयउ तुम नीक प्रसंगा * बोले यदुकुल कमल पतंगा ॥
सो सब भेद गुणन अनुसारा * तुमहिं सुनावहुँ करि विस्तारा ॥

भगवान् बोले हे तात ! तुम ने यह उत्तम प्रसंग उठाया है । यह सब भेद गुणों के अनुसार मैं तुम्हें विस्तार पूर्वक सुनाता हूं ।

श्रद्धा तीन भेद युत अहई * जीवन महँ स्वाभाविक रहई ॥
गुण अनुसार तु भेद बखाने * सात्त्विक राजस तामस माने ॥

श्रद्धा तीन प्रकार के भेदों वाली है जो जीवों में स्वभाव से ही पाई जाती है । गुणों के अनुसार श्रद्धा सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी होती है ।

पूरब संस्कार अनुसारा * जानहुँ श्रद्धा कर संचारा ॥
श्रद्धा मय यह पुरुष बखाना * जिहि जस श्रद्धा तिहि तस माना ॥

पूर्व संस्कार के अनुसार श्रद्धा का संचार सब जीवों में हुआ करता है। यह पुरुष श्रद्धामय ही कहा गया है जिस पुरुष को जैसी श्रद्धा है वह वही है।

सतो गुणी जन पूजहिं देवा * रजोगुणी तिमि असुरन सेवा ॥
तमो गुणी जन जग महँ जेई * भूत प्रेत गण पूजहिं तेई ॥

सतोगुणी लोग देवताओं को पूजते हैं, रजोगुणी यक्ष और राक्षसों को पूजते हैं, और तमोगुणी लोग भूत और प्रेतों को पूजते हैं।

दम्भी पुरुष सहित अभिमाना * कामी लोलुप खल बलवाना ॥
करहिं घोर तप शास्त्र विहीना * इन्द्रिन त्रसित करहिं मतिहीना ॥

कामी, लोभी, दुष्ट, बलवान, और ढोंगी लोग अहंकार पूर्वक शास्त्र की विधि बिना कठोर तपों को करते हैं, वे बुद्धिहीन लोग इन्द्रियों को दुख देते हैं।

मैं व्यापक तन माहिं ते, दुखित करहिं मुहि नीच।
तिन कर निष्ठा आसुरी, पुनि पुनि पावहिं मीच ॥

और मेरे शरीरों में व्यापक होने के कारण वे नीच लोग मुझे भी दुख देते हैं (आत्मा को अधोगति में डालना ही आत्मा को दुख देना है) उन लोगों की धारणा आसुरी है, और वे लोग बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

यज्ञ दान तप और अहारा * सुनहुँ तात तिहु तीन प्रकारा ॥
जो भोजन सुख प्रीति बढ़ावहि * सरस मधुर पौष्टिक मन भावहि ॥

हे तात सुनो यज्ञ, दान, तप, और अहार भी गुणों के अनुसार तीन प्रकार के कहे गये हैं। जो भोजन सुख और शान्ति को

बढ़ाने वाला हो, सरस हो, पुष्ट करने वाला हो, मन को अच्छा लगे।

बल उत्साह बढ़ावन हारा * पुनि निरोग आयुष दातारा ॥
अस अहार उत्तम सुख दाई * सात्विक पुरुषन के मन भाई ॥

बल और उत्साह को बढ़ाने वाला हो, तथा आरोग्य और आयुवर्धक, उत्तम सुख देने वाला अहार सात्विक लोगों को अच्छा लगता है।

राजस जनहिं अहार सुहाई * रोग शोक प्रद अति दुखदाई ॥
लवण अम्ल कटु रुक्ष विदाही * अधिक उष्ण तिमि तीक्ष्ण महाहीं॥

राजसी पुरुषों को वह भोजन अच्छा लगता है जो रोग, दुख, और शोक का उत्पन्न करने वाला हो। तथा नमकीन, खट्टा, कड़वा, रूखा, दाह करने वाला, बहुत गरम, और बहुत तेज हो।

शीतल पुनि परियुषित मलीना * तिमि उच्छिष्ट गलित रस हीना।
सुनहुँ तात अस अधम अहारा * तमो गुणिन कहँ अधिक पियारा।

ठण्डा, बासी, अपवित्र, झूठा, गला हुआ, रस रहित ऐसा जो निकृष्ट भोजन है, वह तमो गुणी लोगों अच्छा लगता है।

निज करतव्य मानि मन माहीं * पुनि फल कर अभिलाषा नाहीं ॥
शास्त्र प्रमान यज्ञ कर जोई * सात्विक यज्ञ कहावत सोई ॥

अन्न दान विधि मन्त्र विहीना * नहिं कछु दान दक्षिणा दीना ॥
यज्ञ करहि पुनि विनु विश्वासा * तामस याग भयउ सो खासा ॥

जो यज्ञ विना विश्वास के अन्नदान तथा और भी दान दक्षिणा से रहित होता है, तथा शास्त्र विधि और मन्त्र विना ही किया जाता है वह तामस दान है।

सुनहुँ तात अब गुण अनुसारा * तन मन वच तप तीन प्रकारा ॥
सेवा करहि सप्रेम घनेरी * गुरु सुर सुधी सुविप्रन केरी ॥
ब्रह्मचर्य सत सरल स्वभावा * शौच अहिंसा तन तप गावा ॥

हे तात ! अब शरीर, मन, और वाणी का तप गुणों के अनुसार तीन प्रकार का सुनों। गुरु, देवता, विद्वनों और ब्राह्मणों की प्रेम सहित सेवा करना, ब्रह्मचर्य को धारण करना, सत्य और सीधा स्वभाव होना, पवित्रता रखना, तथा किसी को न सताना यह शरीर का तप कहलाता है।

बोलहि सदा सत्य मृदु वाणी * तिमि हित कर उद्वेग नशानी ॥
पढ़इ पढ़ावइ वेद पुराना * विदुपन यह वाचक तप माना ॥

सदा सत्य और प्यारी वोली बोले जो हितकर और घबराहट को दूर करने वाली हो। तथा वेद और पुराणों के पढ़ने और पढ़ाने को विद्वान् लोग वाचक तप कहते हैं।

आत्म विनिग्रह सौम्य स्वभावू * मन प्रसाद उर पावन भावू ॥
रह मन मौन शान्ति उर आनी * मानस तप यह कहा बखानी ॥

मन को अपने वश में रखना, स्थिर स्वभाव होना. मन में प्रसन्नता रखना, मन में पवित्र भावों को रखना, मन को शान्त रखना, तथा मन से मौन रहना अर्थात् नाना इच्छाओं का त्याग. यही मानस तप कहा गया है।

योग्य पुरुष विश्वास युत, करहि तीन तप जोय।
फल कर मनहीं न वासना, सात्विक तप कह सोय ॥

योग्य पुरुष श्रद्धा सहित जो तीनों तपों को अर्थात् कायक, वाचक, और मानसिक तपों को फल की इच्छा छोड़ कर अर्थात् केवल अपना कर्त्तव्य समझ कर करता है, वह सात्विक तप कहलाता है ।

निज सतकार मान मद हेतू * करहि तपस्या दम्भ समेतू ॥
मन चंचल नहिं अस्थिरताई * राजस तप सु कहावत भाई ॥

जो तप ढोंग से अपनी इज्जत और अभिमान के लिये किया जाता है, जिसमें मन स्थिर न होकर चंचल रहता है वह राजस तप कहलाता है ।

दै निज आतमहिं अधिक कलेशू * करहि घोर तप मोह विशेषू ॥
अथवा पर पीड़न के हेतू * सो तप तामस कुरुकुल केतू ॥

जो आत्मा को अधिक क्लेश देकर अज्ञान से घोर तप किया जाता है, अथवा दूसरे को दुख पहुँचाने के लिये जो तप किया जाता है, हे अर्जुन ! वह तप तामस है ।

दीजिय ताहि जु अनउपकारी * देश काल अरु पात्र विचारी ॥
दीन्ह चहिय इति मन महँ भावा * सोई सात्विक दान सुहावा ॥

जो दान अनुपकारी को देश, काल, और पात्र विचार कर दिया जाता है, तथा दान देना कर्त्तव्य ही है ऐसा समझ कर दिया जाता है वह दान सात्विक कहलाता है ।

प्रति उपकार हेतु जो दाना * देय कुत्सित मन फल उर आना ॥
राजस दान कहावहि सोई * दान किये कर फल नहिं होई ॥

जो दान कुत्सित मन से, फल की इच्छा से, जिस मनुष्य से अपने उपकार की संभावना हो उसको दान देता है, वह राजस दान कहलाता है, और उसका कुछ फल नहीं होता ।

आदर रहित सहित अपमाना * देश काल अरु पात्र अजाना ॥
श्रद्धा रहित बहुरि जो दाना * अधम सु तामस दान बखाना ॥

जो दान किसी को बिना आदर के अपमान पूर्वक, देश, काल, और पात्र के अज्ञान पूर्वक, बिना श्रद्धा के होता है, वह तामस दान कहलाता है, और सबसे निकृष्ट होता है।

तत्सत् ओमित ब्रह्म के, कहे नाम त्रय भेव।
इनहीं सन भे प्रथम हू, वेद यज्ञ महिदेव॥

ब्रह्म के तीन नाम कहे गये हैं ओम्, तत्, और सत् इनसे ही प्रथम वेद, यज्ञ, और ब्रह्मणों की उत्पत्ति हुई।

ब्रह्म निष्ठ नर ओम उचारी * करहिं यज्ञ तप दान सम्हारी॥
नाना कर्म यज्ञ तप दाना * फलहि त्यागि पुनि सहित विधाना॥
करहि मुमुक्षु तदिति उचारी * कही नीति यह तात विचारी॥

जो सिद्ध ब्रह्म निष्ट लोग हैं वह यज्ञ दान और तप को ओम् का उच्चारण करके करते हैं। नाना कर्मों को जैसे यज्ञ, दान और तप को मुमुक्षु (मोक्ष के चाहने वाले) लोग फल की इच्छा त्याग कर विधि पूर्वक तत् ऐसा उच्चारण करके करते हैं।

साधु भाव सद्भाव जतावन * पुनि शुभ कर्मन बोध करावन॥
सत्य शब्द कर करहिं प्रयोगा * परमारथी वेद वित लोगा॥
यज्ञ दान तप नाना कर्मा * सत्य शब्द प्रतिपादित धर्मा॥

उत्तम भाव, तथा अस्थित्व के जताने को, तथा शुभ कर्मो के लिये परमार्थी वेद के जानने वाले सत्य शब्द का प्रयोग करते हैं। यज्ञ, दान, और तप तथा नाना प्रकार के धर्म कर्म सत्य शब्द से प्रति पादन किये जाते हैं।

यज्ञ दान तप कर्मन माँहीं * करहि किन्तु उर श्रद्धा नाहीं॥
असत कहावहि पारथ सोई * नहिं इह लोक न पर फल होई॥

यज्ञ, दान, तप, आदिक कर्मो को जो बिना श्रद्धा के करता है, हे पार्थ ! उसका किया हुआ असत कहलाता है, और उनकर्मों का न इस लोक में न परलोक में कोई फल होता है।

श्रद्धा तीन प्रकार इमि, सत रज तम अनुसार।
अर्जुन प्रति वर्णन करो, विस्तृत नन्दकुमार॥

भगवान् ने अर्जुन को सतोगुण, रजोगुण, और तमोगुण के अनुसार क्रम से सात्विक, राजस, और तामस तीन प्रकार की श्रद्धा बतलाई।

इति ७ वां अध्याय।

अथ १८ वां अध्याय

अर्जुन विनवहि प्रेम युत, सुनिये नन्दकिशोर ।
वचन तुम्हारे स्वाँति जल, चातक यह मन मोर ॥

अर्जुन भगवान् की प्रेम पूर्वक विनती करने लगा कि हे कृष्णजी ! आपके वचन स्वाँति नक्षत्र के जल के समान हैं और मेरा मन चातक के समान है ।

कहिये नाथ बुझाय, त्याग और सन्यास अब ।
जिमि मन मोह नशाय, पुनि दोउन कर भेदहू ॥

हे स्वामी ! अब त्याग और सन्यास क्या है यह बतलाइये, तथा इन दोनों के भेद को समझाइये जिसमें मन का मोह नष्ट हो ।

तब भगवान् सकल सुखखानी * बोले वचन अमिय रस सानी ॥
काम्य कर्म कर पूरण न्यासा * तात कहावहि जग सन्यासा ॥

तब आनन्द कन्द भगवान् अमृत सरीखे वचन बोले कि काम्य कर्म का पूर्ण न्यास अर्थात् त्याग सन्यास संसार में कहलाता है ।

सर्व कर्म फल त्याग सुजाना * विदुषन त्याग यथारथ माना ॥
त्यागहु कर्म दोष युत जानी * कहहिं कछुक मुनि पण्डित ज्ञानी ॥

हे चतुर अर्जुन ! सब कर्मों के फल का त्यागने को ही विद्वान् लोगों ने यथार्थ त्याग माना है । कोई मननशील, विद्वान्, ज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं कि कर्म को दोष युक्त समझ कर त्याग देना चाहिये ।

तजहि न किमपि यज्ञ तप दाना * अपर मुनिन पुनि यह मत माना॥
तहँ निश्चय अब सुनहुँ हमारा * त्यागहु तात सु तीन प्रकारा॥

और दूसरे मननशील लोगों का यह मत है कि यज्ञ, दान, और तप कर्मों का त्याग न करना चाहिये। हे तात! इस विषय में जो मेरा निश्चय है वह सुनो, त्याग भी तीन प्रकार का है।

तजहि न दान यज्ञ तप करमा * नित आचरहि जानि निज धरमा॥
यज्ञ दान तप आदिक जेई * पावन करहिं मनीषिन तेई॥

यज्ञ, दान, और तप का त्याग नहीं करना चाहिये इनको अपना कर्त्तव्य जान कर नित्य करना चाहिये क्योंकि यज्ञ दान और तप मुनियों के मन को शुद्ध करने वाले हैं।

इनहू कर्मन कहँ करहि, फल आसंग विहाय।
निज कर्तव्यहि मानि पुनि, यह मत मोहि सुहाय॥

इन कर्म्मों को भी केवल अपना कर्त्तव्य समझ कर करना चाहिये, फल की कामना तथा इन कर्मों में आसक्ति का त्याग देना चाहिये यह मत मुझे उत्तम मालूम होता है।

नियत कर्म कर त्याग न सोहा * तासु त्याग तामस वश मोहा॥
तजहि कर्म जो दुष्कर जानी * तन कलेश भय सकल प्रानी॥
तात सु राजस त्याग कहाया * त्याग किये कछु फल नहिं पाया॥

जो नियत कर्त्तव्य कर्म है उसका त्याग ठीक नहीं है, वह त्याग अज्ञान के कारण होता है और तामस होता है। जो कर्म को दुखदाई जान कर शरीर के क्लेश के भय से बचने के लिये त्याग किया जाता है वह राजस त्याग कहलाता है और उस त्याग का कोई फल नहीं होता।

नियत कर्म निज करतब जानी * यत्न समेत करहिं शुभ मानी॥
संग और फल त्यागि करोई * सात्विक त्याग कहत मुनि सोई॥

नियत कर्म को अपना कर्त्तव्य जान कर यत्न से प्रसन्नता पूर्वक करे, और उन कर्म्मों में फल और आसक्ति न करे, मेरी समझ में वही उत्तम सात्विक त्याग कहलाता है।

नहिं अनुकूल कर्म महँ प्रीती * नहिं पुनि द्वेष कर्म विपरीती ॥
संशय रहित सुबुद्धि निधाना * त्यागी परम सतोगुण वाना ॥

जिसको अनुकूल कर्म में प्रीति नहीं है, और प्रतिकूल में द्वेष नहीं है; जो पुरुष संशय रहित है और बुद्धिवान् है, वही परम त्यागी और सतोगुणी है।

अखिल कर्म कहँ देखु विचारी * त्यागि सकत कहु किमि तनुधारी ॥
त्यागहि कर्म फलन कहँ जोई * त्यागी परम कहावत सोई ॥

विचार दृष्टि से देखो तो सारे कर्मों का त्याग शरीरधारी जीवों से कैसे बन सकता है अर्थात् नहीं बन सकता। इसलिये जो कर्म फलों का त्याग कर देता है वही पूर्ण त्यागी है।

इष्ट अनिष्ट सु मिश्र हू, त्रिविध कर्म फल होय।
लहहिं अत्यागी मृत भये, नहिं सन्यासी कोय ॥

कर्म्मों के फल तीन प्रकार के होते हैं इच्छित, अनिच्छित, और मिले हुये, यह फल जो त्यागी नहीं हैं उनको मरने के बाद मिलते हैं, किन्तु सन्यासियों को अर्थात् जिन्होंने कर्म का त्याग किया है उनको नहीं मिलते।

कारण पञ्च विचार, सर्व कर्म की सिद्धि महँ।
सांख्य शास्त्र अनुसार, महाबाहु सो सुनहु अब ॥

सब कर्मों की सिद्ध में पाँच कारण कहे गये हैं उनको अब सांख्य शास्त्र के अनुसार सुनो।

अधिष्ठान करता करण, चेष्टा विविध प्रकार।
पंचम दैव बखानियां, हेतु शास्त्र अनुसार ॥

[१] अधिष्ठान-आधार अर्थात् शरीर, [२] करता-करने वाला अर्थात् जीव, [३] करण-करने का साधन अर्थात् इन्द्रियां, [४] विविध प्रकार की चेष्टा-कई प्रकार के व्यापार,[५] दैव-प्रारब्ध का संयोग, यह शास्त्र अनुसार पाँच कारण हैं जो किसी काम के करने में शामिल हैं।

कवनहु कर्म करहि यह प्राणी * अनुचित उचित काय मन वाणी॥
कारण पंच बखाने जोई * इन बिन कवनिहु काज न होई॥

यह जीव भला या बुरा कोई काम शरीर, मन, या वचन से करे उसमें जो पांच करण कहे गये हैं उनके बिना कोई काम हो नहीं सकता।

केवल आत्महि करता मानहिं * कारण अपर न तहँ पहिचानहिं॥
ते मतिमन्द मूढ़ अज्ञानी * पावहिं पुनि पुनि भव दुख खानी॥

जो लोग केवल आत्मा को ही कर्त्ता मानते हैं और दूसरे कारणों को नहीं समझते वे मूर्ख अज्ञानी बारम्बार संसार को प्राप्त होते हैं।

जिहि के उर न अहंकृत भावा * जिहि कर बुद्धि न कतहु लिपावा॥
सो इन लोकन हू कहँ मारी * ननु मारइ न बँधइ भव भारी॥

जिसके हृदय में अहंकार का भाव अर्थात् मैं करता हूँ ऐसा भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि कहीं आसक्ति के कारण लिप्त नहीं होती, वह पुरुष इन लोकों को मार कर भी, न तो मारता होता है, न उसके फल से संसार रूप जाल में बाँधा जाता है।

ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय त्रय मेला * कर्मन प्रेरक त्रिपुटि बनेला॥
कर्त्ता कर्म करण त्रय नाना * उद्भव करहि कर्म संधाना॥

जानने वाला, जानना, तथा जानने योग्य पदार्थ, इन तीन का जब मेल होता है तो यह त्रिपुटी (तीन) जीव को कर्म करने में प्रेरणा करने वाली बनती है। करने वाला, काम, और काम का

साधन, इन तीनों की त्रिपुटी नाना कर्मों के समूह को उत्पन्न कराती है।

त्रिविध कर्म करता अरु ज्ञाना * गुण अनुसार सु सांख्य बखाना ॥
सो शृणु तात कहहुँ तुहि पाहीं * मिटहि मोह कछु संशय नाहीं ॥

कर्म, कर्ता, और ज्ञान भी सांख्य शास्त्र के अनुसार गुणों के विचार से तीन प्रकार के कहे गये हैं। वह मैं तुझको कहता हूँ कि जिससे तेरा संशय अवश्य नाश होगा।

सब भूतन महँ एक ही, अव्यय भाव लखाय।
भागन महँ अविभक्त सो, सात्विक ज्ञान कहाय ॥

सब भूतों में एक ही अविनाशी पदार्थ को देखना, नाना भागों में बटा हुआ न समझना यही सतोगुणी ज्ञान कहलाता है।

नाना भूतन नाना भावा * पृथक पृथक जो बोध करावा ॥
भेद भाव युत होय जु ज्ञाना * ता कहँ राजस ज्ञान बखाना ॥

जिस ज्ञान से नाना भूतों में नाना भाव अलग अलग प्रतीत हों वह भेद भाव युक्त ज्ञान राजस कहलाता है।

एक अंश सम्पूर्ण समानहि * हेतु रहित जो जन उर आनहि ॥
तत्व रहित फल अल्प बखाना * अधम कहाय सु तामस ज्ञाना ॥

और जिस ज्ञान से बिना प्रमाण ही एक अंश सम्पूर्ण के समान समझ लिया जाता है, वह तत्व रहित थोड़े फल वाला ज्ञान तामस और अधम है।

राग द्वेष तजि संग विहाई * नियत कर्म फल काम दुराई ॥
करतब जानि करहि मन लाई * सो शृणु सात्विक कर्म कहाई ॥

राग, द्वेष, आसक्ति तथा फल की कामना को त्याग कर जो निश्चित कर्म अपना कर्त्तव्य समझ कर मन लगा कर किया जाता है वह सतोगुणी कहलाता है।

अहंकार युत करि फल आसा * करहि कर्म जो अधिक प्रयासा ॥
राजस कर्म कहत तिहि ज्ञानी * करि करि मुदित होहिं अभिमानी ।

जो कर्म अहंकार पूर्वक, फल की आशा से, तथा बड़ी मिहनत से किया जाता है वह राजस कर्म कहलाता है, उसको अभिमानी लोग करके प्रसन्न होते हैं ।

बिनहि विचार करहि जो कामा * हिंसा क्षय पौरुष परिणामा ॥
पुनि आरम्भ मोह वश होई * तामस कर्म कहावत सोई ॥

जो काम बिना विचारे अज्ञान से आरम्भ किया जाता है, तथा जिसका नतीजा दूसरों को दुख और नाश होता है, वह कर्म तामस कहलाता है ।

रह असंग अभिमान तजि, सिद्धि असिद्धि समान ।
पुनि धीरज उत्साह युत, सात्विक कर्त्ता जान ॥

जो कर्त्ता अहंकार को त्याग कर, धैर्य और उत्साह युक्त होता है, तथा सिद्धि और असिद्धि में समान रहता है उसको सात्विक कर्त्ता जानो ।

हर्ष शोक महँ अतिशय लागी * लोभी हिंसक फल अनुरागी ॥
अति अपवित्र राग युत जोई * राजस करता जानिय सोई ॥

जो सुख दुख को बहुत मानता है तथा लोभी, हिंसा करने वाला, और फल की कामना में लगा हुआ है, उस अपवित्र रागयुक्त कर्त्ता को रजोगुणी समझो ।

अमित विलम्बी मूढ़ विषादी * मन अयुक्त अरु अति प्रमादी ।
अधिक हठी कपटी शठ द्रोही * तामस करता जानिय ओही ॥

जो कर्त्ता देर में काम करने वाला हो, मूर्ख हो, शोक करने वाला हो, आलसी हो, जिसका मन एकाग्र न हो, हठी हो, कपटी हो, दुष्ट हो, वैर करने वाला हो, उसको तमोगुणी कर्त्ता जानो ।

सुनहु धनञ्जय गुण अनुसारा * धृति अरु मति हू तीन प्रकारा॥
विलग विलग तिन भेद बताई * सो सम्पूर्ण कहउँ समुझाई ॥

हे अर्जुन ! धैर्य और बुद्धि भी गुणों के अनुसार तीन प्रकार के हैं, उनका भेद अब मैं तुझे समझाता हूँ ।

काज अकाज भयाभय जानहिं * प्रवृति निवृति कर भेद पिछानहिं ॥
बंध मोक्ष कर करहि विवेका * सात्विक बुद्धि सुनिश्चित एका ॥

जो बुद्धि कार्य और अकार्य, भय और अभय, प्रवृत्ति और निवृत्त के भेद को जानती है तथा बन्धन और मोक्ष के विवेक को करने वाली है वही एक स्थिर बुद्धि सात्विक कहलाती है ।

समुझि परइ नहिं धर्म अधरमू * कहा कर्म पुनि कहा अकरमू ॥
जा सन बोध न होय यथारथ * राजस मति सो जानहु पारथ ॥

जिस बुद्धि से धर्म क्या है ?, अधर्म क्या है ?, कर्म क्या है ?, और अकर्म क्या है ?, यह ठीक रूप से नहीं जाना जाता वह राजसी बुद्धि समझनी चाहिये ।

मानहिं धर्म अधर्म कहँ, अन्धकार अधिकान ।
गहै अर्थ विपरीत सब, तामस बुद्धि प्रमान ॥

जिस बुद्धि से धर्म को अधर्म, और अधर्म को धर्म समझा जाय तथा जिस में अज्ञान अधिक हो, और जो उलटे ही अर्थों का ग्रहण करने वाली हो वह बुद्धि तामसी है ।

मन इन्द्रिय प्राणन व्यापारा * जो धृति अचल योग बलधारा ॥
सो धृति सात्विक करि प्रतिपादी * पावहिं जिहि परमारथ वादी ॥

जिस धैर्य के द्वारा योग पूर्वक मन, इन्द्रिय, और प्राणों के व्यापार को धारण किया जाता है वह सात्विक धृति है, और परमार्थी लोग उसको पाते हैं ।

धर्म अर्थ अरु कामहिं धरही ॥ पुनि प्रसंग वश फल अनुसरही ॥
राजस धृति कर कहिउ प्रभावा ॥ रजोगुणि महँ रहई स्वभावा ॥

जो धृति धर्म, अर्थ, और काम के भावों को धारण करती है और प्रसंग से कर्म फल की इच्छा को भी धारण करती है, वह राजसी धृति रजोगुणी लोगोंके स्वभाव में रहती है।

मद प्रमाद भय शोक अपारा ॥ स्वप्न अमित तामस धृति धारा ॥

जो धृति भय, शोक, अभिमान, आलस्य, स्वप्न आदि को धारण करती वह तामसी धृति कहलाती है।

सुखहू त्रिविध कहौं समुझाई ॥ मुग्ध भयउ जहं जीव लुभाई ॥
विषवत पूर्व अमिय परिणामा ॥ बुद्धि प्रसाद जनित अभिरामा ॥
सात्विक सुखकर लक्षण कीना ॥ अब श्रृणु राजस सुखहु मलीना ॥

जिसमें मोहित हुआ जीव लोभित होता है, वह सुख भी तीन प्रकार का कहा गया है। जो सुख बुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न होता है और पहिले विष के समान बुरा और अन्त में अमृत के समान उत्तम होता है वह सात्विक सुख है। अब मलीन राजस सुख का भी वर्णन सुनो।

प्रथमहिं सुधा समान जो, विषवत पुनि परिणाम।
इन्द्रिय विषय संयोगवश, सो सुख राजस नाम ॥

जो सुख प्रथम अमृत के समान अच्छा और परिणाम में विष के समान बुरा हो तथा इन्द्रिय और विषय के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला हो वह सुख राजस कहलाता है।

चारि वर्ण कर कर्म सुहाये * गुण स्वभाव अनुसार बनाये ॥
सुनहुँ तात सो कहउँ बखानी * संस्कार बश पावहिं प्राणी ॥

चारों वर्णों के कर्म, गुण और स्वभाव के अनुसार बनाये गये हैं, वह वर्ण जीवों को संस्कार के अनुसार प्राप्त होते हैं।

शम दम दान ज्ञान विज्ञाना * सत्य सरलता शौच प्रधाना ॥
परम क्षमा तप आस्तिक भावा * ब्रह्म कर्म यह सुनहुँ स्वभावा ॥

ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म यह हैं—शम अर्थात् मन की शान्ति, दम अर्थात् इन्द्रियों की शान्ति, दान, ज्ञान, अनुभव, सत्य, सीधापन, पवित्रता, क्षमा, तपस्या, और आस्तिकता अर्थात् ईश्वर वेद में श्रद्धा का होना।

शूरवीर अति धीर सयाना * रण महँ पीठ किमपि नहिं आना ॥
आन गुमान टान ठकुराई * दान प्रताप नीति निपुणाई ॥
क्षत्रिन कर गुण कर्म बताये * सुनहुँ तात सो सहज सुभाये ॥

क्षत्रियों के स्वाभाविक गुण और कर्म कहते हैं कि शूरवीर होना, धैर्यवान् होना और रण में शत्रुओं को पीठ दिखाने वाला न होना, दान वान, तेजस्वी, राजनीति में कुशल, चतुर कुल प्रतिज्ञा पालन तथा हुकूमत करने का स्वभाव होना।

कृषि गोरक्ष वणिज व्यापारा * वैश्यन कर्म सहज निरधारा ॥
परिचरिया आदिक पुनि कर्मा * शूद्रन कर स्वाभाविक धर्मा ॥

वैश्यों के स्वाभाविक कर्म खेती करना, गाय बैलों को पालना, दूकानदारी करना तथा व्यापार करना है। शूद्रों का स्वाभाविक कर्म सेवा करना है।

अपने अपने कर्म महँ, निरत भये सब कोय।
जिहि प्रकार सिद्धी लहहिं, सुनहु तात अब सोय ॥

अपने अपने कर्मों में लगे हुए सब लोग जिस प्रकार सिद्धि पाते हैं हे प्यारे! अब वह बात सुनो।

जो सब जग महँ व्यापक सांई * भूतनि प्रवृति जहां सन पाई ॥
ताकहँ भजइ करइ निज करमा * पावहिं अटल सिद्धि गुणु मरमा॥

जो ईश्वर सब संसार में व्यापक है, और जहां से सब भूतों ने प्रवृत्ति पाई है, उस परमेश्वर का भजन करते हुए अपने स्वाभाविक धर्म कर्म को करता रहे वह पुरुष सिद्धि को प्राप्त हो जाता है चाहे किसी वर्ण का क्यों न हो।

गुणहुँ रहित निज धर्महि नीका* सुन्दर सुलभहु पर कर फीका॥
स्वाभाविक कर्मन के किये * कबनहुँ पाप लगत नहिं जीये॥

अपना धर्म गुण रहित भी हो तो अच्छा है, किन्तु दूसरे का धर्म यदि सुन्दर और आसान भी हो तो अपने लिये अच्छा नहीं, लोकोक्ति भी है कि "जाको काम ताही को छाजे, अन्य के शीश चपेटा बाजे", स्वाभाविक कर्मों के करने से इस जीव को कोई पाप नहीं लगता।

सहज कर्म सदोष किन होहू * तदपि न त्यागन चाहिये आहू॥
दोष रहित नहिं कारज कोई * जिमि बिनु धूम अगिन नहिं होई॥

स्वाभाविक कर्म दोष युक्त हो तो भी त्यागना न चाहिये। क्योंकि विचार दृष्टि से देखा तो दोष रहित तो कोई कर्म हो ही नहीं सकता जैसे बिना धुएं के आग नहीं होती।

इन्द्रिय जीति न मन कछु कामा * बुद्धि अलिप्त रहहि सब ठामा॥
परम सिद्धि निष्काम बखानी * करि सन्यास सु पावहिं प्रानी॥

इन्द्रियों को जीतकर, मन की इच्छाओं को दूर करके, बुद्धि को सब जगह निर्लिप्त रख कर जो निष्कामता रूप परम सिद्धि कही है उसको यह जीव सन्यास के द्वारा पाता है।

अब संक्षेप सुनहु सो भाई * ब्रह्म सिद्धि जिमि सिद्धहि पाई॥
निष्ठा परा ज्ञान कर सोई * जब साक्षात् ब्रह्म कर होई॥

अब संक्षेप से सिद्धि को पाकर ब्रह्म से मिलना कैसे होता है यह बतलाते हैं। ब्रह्म साक्षात्कार को ही ज्ञान की परम निष्ठा कहते हैं।

धीरज गहि मन वश करे, शुद्ध बुद्धि युत होय।
शब्दादिक विषयन तजे, राग द्वेष मल धोय॥

धैर्य पूर्वक अपने मन को शुद्ध बुद्धि के द्वारा अपने वश में करे। प्रीति और द्वेष की मलीनता को धोकर शब्दादिक विषयों को त्यागे।

लघु भोजी रह देश इकन्ता * मन वच कायहि स्ववश करन्ता॥
ध्यान योग महँ अतिशय लागा * मन उपजहि पुनि परम विरागा॥

थोड़ा भोजन करे, एकान्त देश में रहे, अपने मन वाणी और शरीर को अपने वश में करे, मनमें परम वैराग्य को धारण करे तथा ध्यान में दत्त चित्त हो।

नहिं बल दर्प रोष अभिमाना * काम न संग्रह कछु उर आना॥
परम शान्त ममता सब खोई * ब्रह्म रूप के योग्य सु होई॥

जिसके मन में बल का अभिमान नहीं, गुस्सा नहीं, अहंकार नहीं, और जिसने इच्छा तथा संग्रह का त्याग करके, शान्ति को धारण करके, प्रीति का त्याग किया है, वही पुरुष ब्रह्म रूप होने के योग्य होता है।

ब्रह्म भूत सो बहु सुख पावा * नहि कछु शोक तृषा उर लावा॥
सम सब भूतन मांहि बहोरी * परम भक्ति सो पावहि मोरी॥

ब्रह्म रूप हुआ वह पुरुष बड़े आनन्द को पाता है उसको कोई शोक और इच्छा नहीं होती। सब भूतों में समान रहने वाला वह मेरी परम भक्ति को प्राप्त होता है।

जीव भक्ति बल जानहि पारथ * मम स्वरूप कर तत्व यथारथ॥
इमिपुनि मोहि भलीविधिजानी * मम स्वरूप कहँ पावहि प्रानी॥

हे अर्जुन! यह जीव भक्ति के बल से मेरे स्वरूप के तत्त्व को

यथार्थ समझ लेता है। इस प्रकार मुझको जानकर यह जीव मेरे स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

मम आश्रय केवल उर धारी* कर्महुँ करत सु विविध प्रकारी॥
मम प्रसाद सो सब सुख राशी* पावहि शाश्वत पद अविनाशी॥

मेरा आश्रय ग्रहण करके यह जीव नाना प्रकार के कर्मों को करता हुआ भी, मेरी कृपा से उस आनन्द आगार, अमर, नाश रहित पद को प्राप्त कर लेता है।

मम अर्पण सब कर्म करि, गहि इक मोर अधार।
बुद्धि योग सेवहु सदा, निज मन मो महँ धार॥

सब कर्मों को मेरे अर्पण करो, एक मेरा ही आधार लो अपना मन सदा मेरे में रख कर, ज्ञान योग का सेवन करो।

मम सुमिरन बल विघ्न अपारा* मेरी कृपा जाहु तरि पारा॥
यदि मम सिखवन नीक सुजाना* अहंकार वश करहु न काना॥
तौ शृणु अन्त न होय निबाहू *नाश होय अरु पुनि पछिताहू॥

मेरी कृपा से, मेरे भजन के प्रताप से, अनेक विघ्नों को तर कर पार हो जाओगे। यदि अहंकार के कारण तुम मेरी उत्तम शिक्षा को न मानोगे तो सुनो अन्त में तुम्हारा निर्वाह न होगा और तुम्हारा नाश हो जायगा फिर तुम पछिताओगे।

नहिं लरिहौं जु कहहि हठ भोरे* तात सु मिथ्या निश्चय तोरे॥
छत्रिय प्रकृति सहज जो तोरी* तोहि लगावहि रण बर जोरी॥

हे अर्जुन ! जो तुम हठ से कहो कि मैं नहीं लड़ूगा तो यह तुम्हारा निश्चय गलत है। क्योंकि तुम्हारा सहज स्वभाव क्षत्री होने के कारण तुमको जबरदस्ती युद्ध में प्रवृत्त कर देगा।

निज स्वाभाविक कर्मन माहीं* सदा बँधित परवश की नाईं॥
करहि मोहवश अब नहिं जोई* करिहै पराधीन ह्वै सोई॥

हे अर्जुन ! तुम अपने ही स्वाभाविक कर्मों में परवश हो कर

बँधे हुए हो। मोह के कारण जिस काम को अभी नहीं करना चाहते उसी को अपने स्वभाव से मजबूर होकर फिर तुम करोगे।

परमेश्वर सबके उर माहीं * बैठि करहि प्रेरण शक नाहीं ॥
निज माया बल सबहि भ्रमावा * बैठि कोइ जिमि यन्त्र चलावा ॥

सबके हृदय में ईश्वर बैठ कर प्रेरणा करते रहते हैं इसमें कोई शक नहीं है। अपनी माया के बल से सबको चक्कर खिलाया करते हैं जैसे कि बैठा हुआ कोई मशीन चलाता हो।

गोपनीय अति ज्ञान यह, मैं उपदेशिउ तोहि ।
भली भांति अब सोचि सब, करु मन भावहि सोय॥

हे अर्जुन! अत्यन्त छिपाने योग्य यह ज्ञान मैंने तुमको उपदेश कर दिया इसको अच्छी तरह विचार करके जो तुमको अच्छा लगे सो करो।

अपरहु परम गुप्त इक बाता * श्रद्धा सहित सुनहुँ सो ताता ॥
सखा परम प्रिय लागहु मोही * हित कर बात कहउँ पुनि तोही॥

और भी एक गुप्त भेद की बात जो तुम्हारे फायदे की है मैं तुम्हें बतलाता हूँ उसे श्रद्धा से सुनो। हे सखा! तुम मुझको बहुत प्यारे हो इसलिये तुम्हारे हित की बात पुनः कहता हूँ।

सुमिरहु मोहि सदा मन लाई * परम भक्त मम होहु सदाई ॥
पूजन मोर करहु नित नेमा * नमस्कार पुनि करहु सप्रेमा ॥

सदा मन से मेरा सुमिरन करो, मेरे परम भक्त बनो, नियम से मेरा पूजन करो, और प्रेम पूर्वक मुझे नमस्कार करो।

इहि विधि तात मिलहु मुहि आई * मानहुँ सत्य वचन मम भाई ॥
तो कहँ वचन देहुँ प्रण रोपी * तू मम प्रिय नहि संशय कोपी॥

हे तात! इस प्रकार से तू मुझको मिलेगा यह वचन मेरे सत्य मान, मैं तुझको अहद करके वचन देता हूं कि तू मुझे अत्यन्त प्यारा है इसमें कोई संशय नहीं।

सवै धर्म दूसर तजि देहू ॥ केवल एक शरण मम लेहू ॥
मैं सब करहुँ दूरि तव पापा ॥ मनहिं न धरहु शोक सन्तापा ॥

सब दूसरे धर्मों को त्याग कर केवल एक मेरी शरण ले, मैं तुझे सब पापों से छुटा दूंगा, तू मन में कोई शोक मत कर।

मम निन्दक तिमि श्रद्धा हीनहिं ॥ अथवा तपसंस्कार विहीनहिं ॥
पुनि न श्रवण कर इच्छा जाही ॥ कबहुँ न कहिय ज्ञान यह ताही ॥

जो मेरी निन्दा करे, और श्रद्धा से रहित हो, अथवा सहन शीलता रहित और संस्कार रहित हो, तथा जिसको सुनने की इच्छा न हो, ऐसे पुरुषों को यह ज्ञान कभी न सुनाना चाहिये ॥

परम गुह्य यह ज्ञान जो, मम भक्तनहिं सुनाव।
दृढ़ भक्ति युत पुरुष सो, निश्चय मो कहँ पाव ॥

यह परम गुप्त ज्ञान जो मेरे भक्तों को सुनाता है, वह दृढ़ भक्ति वाला पुरुष निश्चय मुझको प्राप्त होता है।

तिहि सम प्रियतर या भुवि माहीं ॥ कबनहु अपर पुरुष मुहि नाहीं ॥
हम दोउन कर यह संवादा ॥ पढ़इ सुनइ जो त्यागि विषादा ॥
ज्ञान यज्ञ करि परम सुहाना ॥ मोहीं कहँ पूजत मैं माना ॥

उस पुरुष के समान प्रिय इस संसार में मुझे कोई भी दूसरा पुरुष नहीं है। हम दोनों के इस संवाद को जो कोई कुतर्क को त्याग कर पढ़ेगा वा सुनेगा वह पुरुष सुन्दर ज्ञान यज्ञ करके मेरा पूजन करता है ऐसा मैं मानता हूँ।

जो निरमत्सर श्रद्धा वाना ॥ श्रवण करहिं यह पावन ज्ञाना ॥
मुक्त भयउ सो शुभ गति पावा ॥ पुण्य कर्म करि जहँ जन जावा ॥

जो पुरुष श्रद्धावान तथा मत्सरता रहित है वह इस पवित्र ज्ञान को सुनकर दुःखों से मुक्त होकर शुभ गति को प्राप्त होता है और उस जगह जाता है जहां कि पुण्य कर्मों के करने वाले जाते हैं।

कहा जु ज्ञान तात तुहि पाहीं * कहु सचेत तुम सुना कि नाहीं ॥
कहहु धनञ्जय मोह तुम्हारा * नष्ट भयउ कि अबहुँ कछु वारा ॥

हे तात ! हमने जो तुम्हारे प्रति ज्ञान का कथन किया कहो तुमने भी ध्यान लगा कर सुना कि नहीं । हे अर्जुन ! कहो अब भी तुम्हारा मोह नष्ट हुआ कि नहीं ।

तब अर्जुन अस वचन उचारे * धन्य धन्य उपदेश तुम्हारे ॥
तुम्हरी दया मोह मम नाशा * बहुरि भयउ उर ज्ञान प्रकाशा ॥

तब अर्जुन कहने लगा हे कृष्णजी ! आपके उपदेशों को बारम्बार धन्यवाद है । आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट होगया और मेरे हृदय में ज्ञान का प्रकाश हुआ है ।

अस्मृति लौटी स्वस्थ चित, मन सन्देह न कोय ।
नाथ वचन प्रतिपालिहौं, जो कछु आज्ञा होय ॥

हे कृष्णजी ! मेरी स्मृति लौट आई है, मेरा चित्त स्वस्थ हुआ है, और मेरे मन में कोई शंका नहीं है । हे नाथ ! अब जो कुछ आपकी आज्ञा हो मैं उसका पालन करूंगा ।

यह संवाद भयउ कह संजय * वासुदेव महँ और धनञ्जय ॥
सो अति अद्भुत विस्मयकारी * तनु रोमाञ्चित होहि विचारी ॥

तब सञ्जय राजा धृतराष्ट्र से कहने लगा यह कि संवाद श्रीकृष्ण और अर्जुन में हुआ । यह सम्वाद अत्यन्त अद्भुत और आश्चर्यजनक है इसको विचार कर शरीर में रोमाञ्च होता है ।

मो पहँ कीन्ह व्यास मुनि दाया * जो यह गुप्त ज्ञान सुनि पाया ॥
राज योग यह गुप्त महाना * राजन सो हरि स्वयम् बखाना ॥

मुझ पर व्यासजी ने बड़ी कृपा की जो मैं यह ज्ञान सुन सका । हे राजन् यह अत्यन्त गुप्त राज योग भगवान् ने साक्षात् अपने मुख से कहा ।

केशव अर्जुन कर संवादा * अति अद्भुत तिनि हरह विषादा ॥

सुमिरि सुमिर उर मोद घनेरा॥ बेर बेर हर्षित मन मेरा ॥

श्रीकृष्ण और अर्जुन का यह संवाद अत्यन्त अद्भुत तथा शोक को नाश करने वाला है। इसको स्मरण करके मेरा मन बारबार प्रसन्न होता है तथा मेरे हृदय में बड़ा आनन्द होता है।

अद्भुत रूप सुमरि हरि केरा॥ राजन मन अचरज बहुतेरा ॥
सुमिरन मन ते बिसरत नाहीं॥ पुनि पुनि मोद उठत उर माहीं॥

भगवान् का अद्भुत रूप स्मरण करके हे राजन्! मनमें बड़ा आश्चर्य होता है। और स्मरण मन से भूलता नहीं तथा बारम्बार हृदय में आनन्द होता है।

प्रथम धन्य हरि ज्ञान निधाना॥ धन्य धनञ्जय प्रिय हरि माना॥
धन्य व्यास मुनि जे सब जाना॥ मैं पुनि धन्य सुना निज काना॥

पहिले तो हरि भगवान् जो ज्ञान के खजाने हैं उनको धन्यवाद है, फिर अर्जुन को धन्यवाद है कि जो भगवान् का इतना प्यारा था, फिर श्री व्यास मुनि जो सब कुछ जान लेते थे उनको धन्यवाद है, तथा मुझको भी धन्य है कि यह सब ज्ञान मैंने अपने कानों से सुना।

जहँ योगेश्वर कृष्णजी, जहां धनुर्धार पार्थ।
विजय नीति लक्ष्मी तहां, तहां अर्थ परमार्थ॥

जहां परम योगी श्रीकृष्णजी हैं, जिधर धनुर्धारी अर्जुन है, वहां ही विजय, नीति, लक्ष्मी, अर्थ और परमार्थ है।

पढ़इँ सुनइँ जे प्रेम मन, गीतायन मन लाय।
अवशि परमपद पावहीं, भव दुख सहज नशाय॥

जो लोग इस गीतायन को प्रेम से मन लगा कर पढ़ते और सुनते हैं उनको अवश्य परमपद रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है और उनके सांसारिक दुखों का नाश हो जाता है।

॥ इति शुभम् ॥